श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तकों
की

शुभ नामावलि

---:o:---

१ + श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ १०००)
२ + ,, ,, मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन, मु० नगर १०००)
३ + ,, ,, प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी मेरठ १०००)
४ + ,, ,, मलेकचन्द लालचन्द जी जैन मुजफ्फरनगर ११००)
५ ,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ १०००)
६ + ,, ला० कृष्णचन्द जी जैन रईस, देहरादून ११११)
७ + ,, ,, दीपचन्द जी जैन रईस, देहरादून १०००)
८ + ,, ,, वारूमल प्रेमचन्द जी जैन रईस, मसूरी ११००)
९ + ,, ,, मुरारीलाल बाबूराम जी जैन, ज्वालापुर १०००)
१० ,, ,, केवलराम उग्रसेन जी जैन, जगाधरी १०००)
११ ,, ,, जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला १०००)
१२ ,, ,, बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन शिमला १०००)
१३ + ,, सेठ गैंदालालसा दगड़ूसा जी जैन, सनावद १०००)
१४ ,, ला० बाबूराम अकलंकप्रसादजी जैन रईस, तिस्सा १००१)
१५ ,, ,, मुकन्दलाल गुलशनराय जी जैन, नई मंडी, मुजफ्फरनगर १००१)
१६ ,, ,, सुखवीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ, बड़ौत १००१)

नोट :— + इस चिन्ह वाले सज्जनोंका पूरा रुपया कार्यालयमें जमा है।

से ही निवृत्त हो जाऊँ। आपका उपदेश है,

"ज्ञात्वालसः श्रमं व्यर्थं नेत्रोन्मेष निमेषयोः।
यस्थ सुखी स यथातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

(अध्याय नं० ५)

अर्थात् जिसका उपयोग आत्मामें इतना स्थिर हो जाता है कि नेत्रके उघाड़ने व बन्द करने तकके कार्यमें भी जो परिश्रम होता है वह व्यर्थ है, यह समझकर शरीरकी क्रियायोंमें भी आलसी हो जाता है अर्थात् कोई भी क्रिया जो नहीं करता वही स्वमें स्थित-स्वस्थ है, और वह ही आत्मा सुखी होता है इसलिये मैं अपनेमें ही रहता हुआ अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ।"

'श्री सहजानन्द गीता' विपत्तिमें हमारा सच्चा मित्र है। जिस समय हम दुःखसे व्याकुल होते हैं, पाप कर्मका उदय होता है, किसी प्रकार भी सुख और शांतिकी प्राप्ति नहीं होती तो 'गीता' का यह पाठ अमृतका कार्य करता है। घोरसे घोर विपत्ति आनेपर भी हम किस प्रकारसे उस विपत्तिको आकुलित न होते हुए सहन कर सकते हैं इसका सीधा-सादा उपाय गीताकारने अध्याय नं० ७ श्लोक नं० २ में हमें बताया है कि सदैव मैं इस बातका ही विचार करूँ कि ये जो विपत्तियें मेरे ऊपर आ रही हैं ये सब मेरे ही पूर्वकृत कर्मोंका फल है। अतः मुझे स्वयं समभावसे सहन करना चाहिये। कोई भी मुझे इस विपत्ति से छुटकारा दिलानेमें समर्थ नहीं है। इस अस्थिर जगतमें मेरा कोई भी रक्षक अथवा शरण न हुआ, न है और न होगा। मैं सत् पदार्थ हूं। अतः अनादिसे हूं। इस भवसे पहले भी मैं था। यहाँपर भी किसी आत्माने मुझे मरणसे न रोका। इस भवमें भी मैं अनेक बार असाध्य रोगोंसे पीड़ित हुआ परन्तु रंच भी कोई मेरे इस दुःखको बांट न सका और न कम ही कर सका। और फिर ये सारी तरंगें मेरा स्वभाव नहीं, न इन स्वरूप मैं हूं मैं तो त्रैकालिक एकाकार ज्ञानस्वरूप

है ध्यास. अब तो मैं परमें शरण बाहिरके अपनेको हटाकर आत्मस्व
स्वरूप निज महलमें ही ठहर जाऊं तो मैं सुखी हो सकता हूं। हितका
अनोखा उपाय है सुखी होनेका। न कुछ किसीसे लेना है और न कु
किसीको देना है। बस श्रद्धा उपर्युक्त प्रकार हो जाये तो सुख।
सुख है।

विपत्तिसे अधिक व्याकुल होनेका मुख्य कारण यह होता है कि
शरीरसे हमारा बहुत ही अनुराग है। शरीरको इतना सुखिया हमने
बना रखा है कि तनिक सी वेदना इस शरीरमें हुई कि हम परेशान हो
जाते हैं, रोने चिल्लाने लगते हैं। यह तो रही शारीरिक वेदनाकी
बात। जब हमें किसी प्रकारकी धनहानि हो जाती है या इष्ट-वियोग
अथवा अनिष्ट-संयोग आदि हो जाता है तो हम महान् दुःखी हो जाते
हैं जिसका मूल कारण है कि हमने यह श्रद्धा बना रखी है कि हमें
अमुक दुःखी करता है, अमुक सुखी करता है और यदि अमुक इस
प्रकार ऐसा न करता तो हमारा भी ऐसा न होता। पूज्यश्री किस ढंगसे
उस दुःखी होनेके कारणको हटानेका उपाय बताते हैं देखनेकी चीज
है। आप कहते हैं—

"देहोऽस्तु वा न को लाभः का हानिर्मेतु शान्तिदा।
ज्ञानदृष्टिः सदा भूयात्तया स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ ७ ॥ १८ ॥

अर्थात् देह हो उससे क्या लाभ है अथवा देह न हो उससे क्या हानि
है। परन्तु शान्ति देने वाली ज्ञानदृष्टि मेरे सदा ही हो जिससे मैं अपनेमें
अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ।" और यदि युक्तिसे भी विचार करें तो
मालूम होगा कि यह शरीर ही सब अनर्थोंकी जड़ है, शरीरके कारण
ही भूख प्यास आदिकी वेदनायें होती हैं। इष्ट-अनिष्टकी कल्पना
भी तो शरीरके संसर्गमें ही होती हैं। शरीर न रहे तब किसी प्रकार
की भी आपत्ति न रहे। शरीर रहित होनेपर ही तो भगवान बनते हैं
अर्थात् मोक्षमें जा विराजते हैं। इस प्रकारका यह शरीर है, इसमें

फिर ममत्व क्यों करें ? शरीरको हम अलग तो नहीं कर सकते परन्तु इतना तो किया ही जा सकता है कि उसमें ममत्व-मोह न करें। फिर शरीर रहे या न रहे कोई हानि नहीं। केवलज्ञानियोंके शरीर रहता है परन्तु तत्-सम्बन्धी मोह राग न रहनेके कारण वह अनन्तसुखी रहते हैं। अब आप ही बतलाइये कि क्या इस प्रकारकी श्रद्धा करने वाला आत्मा घोरसे घोर शारीरिक वेदना उपस्थित होनेपर भी घबरा सकता है ? नहीं, कभी नहीं।

आगे चलकर आप बतलाते हैं कि यह तो हमारा भ्रम मात्र है कि हमें अमुक पदार्थ सुखी करता है और अमुक दुखी करता है। मैं तो स्वतन्त्र, एकाकी सबसे भिन्न हूं। सब पदार्थ अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें परिणमते हैं, एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ नहीं कर सकता, न कुछ उससे ले सकता है, न कुछ उसे दे सकता है। चाहे कोई पदार्थ किसी रूप परिणमो मैं तो सदैव अपने ज्ञान-स्वभावमें ही लीन रहूं यही सुखका उपाय है। इस प्रकार जब हमारी श्रद्धा हो जायेगी फिर भी हम दुखी रहें असम्भव सा प्रतीत होता है।

वस्तुतः अपनी ओर पूर्ण रूपसे लक्ष्य होनेपर ही सच्चे आत्मीक सुखकी अवस्था प्रकट होती है। वर्तमानकी जितनी भी पर्यायें हैं वे सभी दुःख रूप ही हैं। उनसे छुटकारा पानेके लिये हमें अपने आत्म-स्वरूप या आत्मगुणोंकी पहिचान करनी होगी और उनकी प्राप्तिमें ही प्रयत्नशील होना पड़ेगा। इसी भावको निम्नलिखित श्लोकों द्वारा पूर्ण युक्तिके साथ प्रदर्शित किया गया है :—

श्लोक :—

पूर्णदृग्ज्ञानसत्सौख्यो सिद्धात्मा देहतोऽस्त्यहम् ।

पर्यायश्च भवितं शक्यः स्या स्वामी स्वे सर्वो स्वयम् ॥११५॥

मे रहित, स्वमें स्थित व समताका धारी हो वैरागी बनकर सुखका पात्र हो सकता है इसीका वर्णन आपको वैराग्य प्ररूपक, स्वात्म प्ररूपक, साम्यप्ररूपक, व वैराग्यप्ररूपक, क्रमशः चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें अध्यायमें मिलेगा। इतना कठिन विषय होते हुए भी आपने चुटकुलोंमें गहन तत्त्वको समझाया है और सुखका मार्ग बहुत ही सरल शब्दोंमें दिखाया है। यह कार्य इस प्रकार सम्पन्न होना आप जैसे अनुभवी द्वारा ही सम्भव था।

आशा है हम आपके परिश्रमसे पूर्ण लाभ उठायेंगे और सुखका सच्चा मार्ग जो इस ग्रन्थमें प्रतिपादित किया गया है उसका श्रद्धान ज्ञान और आचरण करके अपनेको सुखी बनायेंगे।

—मूलचन्द जैन
मुजफ्फरनगर

श्री अध्यात्मयोगी, शान्तमूर्ति, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्यश्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

पू० श्री १०५ क्षुल्लक वर्णी मनोहर ज
'सहजानन्द' महाराज
की
जीवन—झांकी

"श्रीयुत मनोहर जी मनोहर ही हैं। यह बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति है। इसकी धारणा शक्ति बहुत ही प्रबल है। यह एक बार हीमें धारणा कर लेता है? हमसे पूछो तो यह निकट भव्य है इसका नाम तो परमेष्ठी मन्त्र में लिया जायेगा।"

'गणेश वर्णी'

परमपूज्य गुरुवर्य्य श्री प्रातः स्मरणीय, अध्यात्मिकसंत विश्वहितैषी, महात्मामूर्ति, न्यायाचार्य, पूज्यपाद श्री १०५ क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराजके उक्त शब्द ही पर्याप्त हैं आपके जीवनका दिग्दर्शन करानेकेलिये, फिर भी भक्तिवश मैं कुछ लिखनेका असफल प्रयत्न कर रहा हूं।

शिशु मदनमोहनः—

कार्तिक कृष्णा १० विक्रम सं० १९७२—आज जिला झाँसी (रियासत ओरछा) के दमदमा ग्रामके इस छोटेसे घरमें यह हर्षध्वनि कैसी? यह रसमता क्यों? मालूम हुआ कि आज . सीमती- ... पुत्र रत्नको जन्म दिया है। इसीका यह

आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। पिता श्री गुलाबराय जीके हर्षका कोई पारावार ही नहीं। चाचा गौरीदत्त प्रसन्नतासे फूले नहीं समाते। सबोंने मिलकर इस सौम्यमूर्तिका नाम दिया 'मदन मोहन'।

बालक मगनलालः—

किसीको मन्द मुसकानसे, किसीको अपनी सुन्दर चाल ढालसे, और किसीको तुतलाती भाषासे रंजित करता हुआ बालक बढ़ने लगा। परन्तु देव—देवसे यह सब न देखा गया। ३ वर्षका बालक—बीमार पड़ा—पेट का भयंकर रोग। बचनेकी कोई आशा नहीं। परिवारजनोंने बालकके जीवित रहनेकी आशासे बालकका अशुभ नाम रखा 'मगनलाल' अर्थात् मांगा हुआ। गुरुवर्गने नाम दिया। मगनलालके पेटकी नसोंपर गर्म लोहा रखा गया। वह बच गया। क्या पता था किसीको उस समय कि बालक मगनका यह नाम सार्थक ही सिद्ध होगा अर्थात् भविष्यमें वह सदा ही अपने आत्मावलोकनमें 'मगन' रहा करेगा। समवयस्क बालकोंमें खेलता परन्तु किसी बच्चेका दिल न दुख जाय यह भावना सदा रहती। सदैव पराजित बालकका पक्ष लेना क्योंकि दूसरे बालक उस बच्चेकी हंसी उड़ाते।

विद्यार्थी मगनलालः—

अब कुछ आगे चलिये। मगनलाल ६ वर्षके हुये। घरपर ही पढ़ना आरम्भ किया। ११ वर्ष तक घरपर ही विद्याध्ययन किया। पाठशालामें बच्चोंका पिटना देखकर घबराते थे। एक दिन पाठशाला न जानेके अपराधमें आपकी माता जीने आपको पीटा। क्या विचारा आपने उस समय 'यदि मैं स्वभा

एक लुटिया हाथमें ले ली और एक कपड़ा (पीछीका भाव लानेके लिये) दूसरे हाथमें ले लिया। बहुत नीची निगाहसे, भूमिको निरखते हुए (ईर्या समितिसे), क्या मजाल कि आंख इधर-उधर हट जायें, चले आ रहे हैं, बच्चोंको कह रहे हैं कि लो क्षुल्लक जी आ रहे हैं शान्त हो जावो। देखा आपने आपके उस समयके —एक छोटेसे बच्चेके हृदयको।

एक दिन और—सब बच्चे खेल रहे थे। मब मस्त थे। आप एक ओर एकान्तमें बैठे हुए थे। कुछ विचार चल रहे थे उस समय आपके हृदयमें। नरकोंका ध्यान आ गया। कितने दुःख हैं वहाँ, कोई कढ़ाईमें तला जा रहा है, कोई काटा जा रहा है, कोई पीटा जा रहा है। बस अचानक नरकोंके दुःखोंसे भयभीत होकर आपके मुँहसे एक जोरकी चीख निकल पड़ी। बच्चे इधर-उधरसे दौड़े। पूछा 'क्या बात है'? उत्तर दिया 'कुछ नहीं'। अब आप ॥ विचारिये कि जो व्यक्ति बचपनमें केवल नरकोंके दुःखोंका ध्यान करके इतना घबरा जाये कि उसके मुँहसे चीख निकल जाये, क्या वह व्यक्ति अपने जीवनमें कोई ऐसा कार्य कर सकता है कि जिसके फलस्वरूप नर्क आदिकी यातनायें सहन करना पड़े? "आपके शिक्षाकालके प्रधानाध्यापकजीके एकबार मुजफ्फरनगरमें —श्री महाराजजीकी ३४वीं जयन्तीके अवसरपर दर्शन हुये आप बड़े विद्वान् एवं शान्त सत्पुरुष हैं आपने अपने भाषणमें एक घटना सुनाई कि एक बार छात्रावस्थामें श्रीमनोहरजी जब शास्त्री कक्षामें थे अपने कमरेमें देहाती पुरुषके सरल चरित्रकी नकल कर रहे थे मैंने देखा और सोचा कि आजके पाठके समय इसे दंड देवेंगे, प्रमेयकमलमार्तण्डकी कक्षामें मैंने पिछला पूछना शुरू किया तो मैंने बहुत सूक्ष्मतासे अनेक विषय पूछे तब प्रत्येक प्रश्नका उत्तर पूरा पूरा मिला मुझे जब कोई अवसर ही न मिल सका तो स्वयं शान्त होना पड़ा"। संगीतका विशेष शौक था। हारमोनियम

न्यायतीर्थ मनोहरलाल :—

बुद्धिके बड़े तीक्ष्ण थे। १७ वर्षकी अवस्थामें न्यायतीर्थ (सरकारी परीक्षा) में उत्तीर्ण हुए। इस छोटीसी वयमें विशाल ज्ञान प्राप्त करनेका कारण आपके ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम तो है ही परन्तु आपकी गुरु भक्ति भी बहुत अंशोंमें निमित्त कारण बनी। आपके गुरु पूज्य श्रीमहाराजजीके प्रति आपका ऐसा भक्तिपूर्ण व प्रेममय व्यवहार है कि अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता ?

पंडित मनोहरलाल :—

इसके बाद आपने संस्कृत विद्यालयमें संस्कृत अध्यापकका कार्य किया ? चाहे थोड़े समयके लिये पढ़ाते थे परन्तु पूरे तन मनसे। परीक्षा फल ९० फ़ीसदीसे अधिक रहता। पढ़ानेमें अब भी बहुत रुचि है। कोई समय हो हर समय बाल, वृद्ध, युवा कोई हो धर्म शिक्षा देनेमें ही संलग्न रहते हैं। मुख्य कर्तव्य समझते हैं आप इसको।

मंत्री मनोहरलाल :—

सामाजिक क्षेत्रमें पैर रखा। १६ वर्षके थे। "जाति सुधारक सभा" के मंत्री नियुक्त किये गये। गांवके छोटे २ झगड़े आपके पास आते। बड़ी कुशलतासे उनका फैसला करा देते। जनतामें इतना प्रभाव व विश्वास था कि कहा करते थे "जो मनोहर कर देगा, स्वीकार है"। एक बार सतगुवां ग्राममें एक वृद्ध—विवाह होने जारहा था। आप साईकिलपर उस गांवमें पहुँचे। उस होने वाले अनाचारको रोका। जनता बहुत ही प्रभावित हुई। अब भी जहां जाते हैं समाजमें मनमुटावके दूर करनेका ही प्रयत्न करते रहते हैं।

श्री शिखरजी पहुँच कर आपने पूज्य गुरु श्री महावर्णीजीके समक्ष ब्रह्मचर्य व श्रावकके व्रत धारण किये।

पूज्य श्री वर्णी जी :—

अब तो आप सब झंझटोंसे मुक्त हो चुके थे। सुख और शांतिकी प्राप्तिके हेतु ज्ञानार्जनमें जुट गये। वैराग्यता और बढ़ी। २ वर्ष बाद ही काशीमें सप्तम प्रतिमाके व्रत धारे। तभीसे आपको श्री वर्णीजी कहने लगे।

आपके पूज्य गुरुजी श्री पं० गणेशप्रसादजी वर्णी (वर्तमान पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी) पैदल यात्रा करते २ सागर (सी० पी०) पधारे थे। सहारनपुरके कुछ व्यक्ति दशलक्षण पर्वमें पूज्य गुरुजीके दर्शनार्थ सागर गये। वहीं पर आपके दर्शनोंका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और साथ ही साथ आपकी मधुर और मनोहर वाणी सुननेका भी। बहुत प्रभावित हुए। पूज्य गुरुजीसे आपको उत्तर प्रान्तमें भेजनेके लिये प्रार्थनाकी, प्रार्थना स्वीकृत हुई। उत्तरप्रान्तका अहोभाग्य आप जून १९४४ को सहारनपुर पधारे। आपकी मधुरवाणीने सबका मन मोह लिया। संसारके दुखी प्राणी किस प्रकार दुखसे छूट जायें यही सदैव आपकी भावना रहती थी। दुखी प्राणियोंको धर्मामृत पिलानेकी एक तड़फन थी आपके हृदयमें। इसी उद्देश्यसे आपके ही उपदेशसे प्रभावित होकर सहारनपुरमें उत्तरप्रान्तीय दिगम्बर जैन गुरुकुलकी स्थापना आपके ही कर-कमलों द्वारा हुई। अब यह गुरुकुल श्री हस्तिनागपुर तीर्थ क्षेत्र पर सुचारू रूपसे चल रहा है।

इसके पश्चात् आपने जबलपुरमें आठवीं, फरवरी सन् १९४८ ई० में बरवासागरमें नवमी, और दिसम्बर सन्

१६४८ ई० में आगरामें दशम प्रतिमा अपने गुरु पूज्य महावर्णी जीके समक्ष ली।

क्षुल्लक वर्णीजी:—

परिणामोंके पलटनेमें क्या देर लगती है? परिणाम और वैराग्यमय हुये। आपको आहारके लिये लेजानेके लिये श्रावकोंमें प्रायः प्रतिदिन विसंवाद हो जाया करता था। कोई कहता था मैंने पहले कहा, कोई कहता था मैंने। सरल हृदय तो आप थे ही। आप किसीका चित्त दुखाना नहीं चाहते थे। उक्त विवादके कारण ही बहुत ही छोटी सी वयमें विक्रम संवत २००४ में सबके मना करने पर भी आपने श्री हस्तिनागपुर तीर्थ क्षेत्र पर पूज्य गुरु महावर्णी जीके समक्ष नैष्ठयवृत्तिका व्रत ग्रहण किया। अब आप क्षुल्लक वर्णीजीके नामसे प्रसिद्ध हुये।

सफल लेखक:—

आप व्रती व त्यागी ही नहीं, वरन् उच्च कोटिके विद्वान और लेखक भी हैं। आपकी लेखन शैली अद्वितीय, मनोहर, सरल और हृदय तक पहुंचने वाली है। १४ वर्षकी अवस्थामें ही आपने 'शौक-शास्त्र' नामका ग्रन्थ संस्कृत भाषामें बनाया जिसमें रेलकी सवारी, खेल कूद आदिके ढंगका वर्णन था। २६॥ वर्षकी अवस्थामें 'मनोहर पद्यावलि' की रचना की जिससे पता चलता है कि आप काव्य व छन्द शास्त्रके भी उच्चकोटिके जानकार हैं। अब आपने गत २-२॥ वर्षोंमें तत्त्वरहस्य अध्यात्मचर्चा तत्त्वसूत्र आदि अनेक ग्रन्थ रचे हैं। एक समाधान सूत्र रचा जिसमें ११० अध्यायोंमें लगभग ४००० सूत्र हैं। धर्मकी विशेष जानकारीके लिये 'चौतीस ठाना' ग्रन्थका निर्माण किया

जिसमें आपके विशाल ज्ञानका दिग्दर्शन होता है। 'आत्म-सम्बोधन' जिसमें १०६३ कल्पनायें हैं इस बातको सिद्ध करनेमें पर्याप्त हैं कि आपके परिणामोंमें कितनी, संसार, शरीर, भोगोंसे विरागता भरी हुई है। एक २ कल्पना ऐसी है जिसको जीवनमें उतार कर सर्व साधारण अपना कल्याण कर सकता है। इस पुस्तकका तीसरा संस्करण अब आपके समक्ष है। जन साधारणको प्रारम्भिक धर्म-ज्ञानके हेतु आपने 'धर्म बोध' नामक पुस्तककी रचनाकी है जिसका दूसरा संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। इन सबके अतिरिक्त आपने फरवरी सन १६५१ में अपने गुरु जीके संगमें इटावासे फिरोजाबाद आते समय विहारमें १४ दिनमें 'गीता' रची जिसमें ६७४ संस्कृत के श्लोक हैं। यह महान और उच्चकोटिका ग्रन्थ है। और अनेक ग्रन्थ आप लिख रहे हैं, जो कि हमें आशा है बहुत शीघ्र ही प्रकाशमें आयेंगे और सर्व साधारणके कल्याणमें निमित्त होंगे।

सहजानन्दः—

'गीता' के प्रत्येक श्लोकके चौथे चरणमें सहज आनन्दका वर्णन किया गया है। इसलिये आपका नाम सहजानन्द पड़ा। इसके अतिरिक्त जब आप व्रती-सम्मेलनमें भाग लेनेके लिये फरवरी सन् १६५१ ई० को फीरोजाबाद पहुँचे वहां आपके गुरु पूज्य श्री वर्णी जीने आपको परमानन्दके नामसे पुकारा। साथ ही यह बात भी जची 'परम' की अपेक्षा स्वाभाविक अर्थात् 'सहज' अच्छा प्रतीत होता है। अतः आपको आपके सहवासी "सहजानन्द" पुकारने लगे।

धर्मसंस्थाओंके संस्थापकः—

आप अपना कल्याण तो कर ही रहे हैं परन्तु मोहान्धकारमें डूबे हुए संसारी प्राणियोंका कल्याण कैसे हो सदैव यही

विचारसे रहते हैं। जहाँ भी जाते हैं यही उपदेश देते हैं कि अगर सुख और शांति प्राप्त करना है तो जीवनको धर्ममय बनाओ। सर्वसाधारण धर्मके विषयमें बिल्कुल अन्धकारमें है। लक्ष्य स्कूल व कालेजकी शिक्षाकी ओर है और धार्मिक शिक्षाकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते! परिणाम यह हो रहा है कि स्कूल और कालेजके विद्यार्थी धर्म नामकी वस्तुसे बिल्कुल अपरिचित रहते हैं और दूषित वातावरणमें रहने वाले ये विद्यार्थी विषय भोगोंके गुलाम बनकर अपने जीवनको बरबाद कर देते हैं। व्यापारी वर्ग भी अर्थ संचय और विषय भोगोंमें इतने संलग्न रहते हैं कि जीवनका उद्देश्य क्या है इसको बिल्कुल ही भूल जाते हैं। ऐसे ही विद्यार्थियों व व्यापारियोंका जीवन सुख और शांतिमय बनानेकेलिये आपने १० जनवरी सन् १६५१ ई० में मेरठ सदरमें धर्मशिक्षा सदनकी स्थापना की जहांपर बालक-विद्यार्थीको सिखाया जाता है कि जिस धर्मकेद्वारा उसका जीवन सुख और शांतिमय बन सकता है वह धर्म है क्या? अब मेरठ सदरमें ही नहीं वरन् मेरठ शहर, मुजफ्फरनगर, कैराना, कांधला और शामलीमें भी धर्म शिक्षा सदन सुचारु रूपसे जन कल्याणका कार्य कर रहे हैं। बालक विद्यार्थियोंका उत्साह बढ़ानेकेलिये आपने १० जौलाई सन् १६५१ ई०को मेरठ सदरमें उत्तरप्रान्तीय श्री धर्मशिक्षापरीक्षालयकी स्थापना की जिसमें बालकविद्यार्थियोंके परीक्षाका बहुत ही उत्तम प्रबन्ध है। बालकों और व्यापारियों तक ही सीमित न रख कर आपने इस कार्यको आगे बढ़ाया। सितम्बर सन् १६५१ ई० में मेरठ सदरमें श्री श्राविका धर्मशिक्षासदनकी स्थापाना की जिसका उद्देश्य महिलाओंको धर्मशिक्षा देना है। इन सबके अतिरिक्त इस उत्तरप्रान्तमें जिसके अभावमें विरोधप्रसङ्ग होनेका मार्ग बंद सा हो रहा था

थने इस प्रान्तमें आते ही स्थापित कर दिया था वह है श्री दि० जैन उदासीनाश्रम गुरुकुल, हस्तिनापुर।

यूं तो जिसने भी आपका उपदेश सुना उसका ही कल्याण हुआ परन्तु जो साक्षात आपके चरण चिन्होंपर चल रहे हैं वे सर्व श्री ब्र० ज्ञानानन्द जी, ब्र० नित्यानन्द जी, (भूतपूर्व हेडमास्टर व इंजिनियर क्रमशः) श्री ब्र० ज्ञानानन्द जी, श्री विवेकानन्द जी, ब्र० दयानंद जी, ब्र० सत्यानंद जी मंत्री व श्रीमान् पं० शरणाराम जी आदि हैं। ये सब आपके सम्पर्कमें रहकर स्वयंका भी कल्याण कर रहे हैं और सर्वसाधारणका मार्ग प्रदर्शन कर रहे हैं।

और क्या क्याः—

त्यागी भी बहुतसे होते हैं। विद्वानोंकी भी कमी नहीं है। परन्तु त्यागी होनेके साथ ही साथ उच्चकोटिके विद्वान भी हों ऐसे विरले ही होते हैं। पूज्य क्षुल्लक श्री वर्णी जी भी उन्हींमें से हैं। जिस समय पूज्य गुरुवर्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी मेरठसे इटावाको प्रयान कर रहे थे इस समय आपके विषयमें जो शब्द उन्होंने कहे थे भूलेसे नहीं भुलाये जा सकते। उन्होंने उपस्थित जनताको सम्बोधित करते हुए कहा था "मैं तुमको एक रत्न सौंपे जा रहा हूँ, भले प्रकार रक्षा करना इसकी। ऐसा त्यागी और ऐसा विद्वान तुमको कहीं न मिलेगा।"

आपकी प्रवचन शैलीकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। जिस समय आपके हृदयकी आवाज श्रोताओं तक पहुँचती है तो उनके हृद्-तन्त्रीके तार झनझना उठते हैं और वह

निम्नलिखित कुण्डलीसे आपके गुणोंका अच्छा विवरण किया है। पाठकोंकी जानकारीके लिये वह नीचे दिया जाता है।

पूज्य वर्णी जी महाराजकी जन्म कुण्डली

७ मृग	६ बुध	५ च.
८		४ मं के
९	श्री	३ रा
१० श	१२	२
११ गु		१

जन्म-कार्तिक कृष्ण ४ सोमवार रात्रिके पिछले समय ४॥ बजे। बुध लग्न, सूर्य नीच, मंगल नीच, शुक्र स्वग्रही। सिंह राशि।

—संक्षिप्तमें ग्रहोंका फल—

(१) बुध लग्नेश और राज्येश होकर स्वयं लग्नमें उच्चका होकर बैठा है तथा किसी भी अन्य ग्रहकी शुभाशुभ दृष्टिसे रहित है इसलिये आपकी शारीरिक प्रवृत्तियां श्रेष्ठोत्तम रहेंगी।

(२) शनि विद्याभवनका मालिक है उसपर ज्ञानकारक गुरुकी पूर्ण दृष्टि है तथा गुरुशनिका महान् शुभ योग नवमपंचम योग हो रहा है इस योगमें जातक तार्किक एवं बुद्धिशाली होता है।

(३) स्त्री तथा शुभ भवनका मालिक शुक्र गुरुके व्यय पञ्च स्थानमें बैठा है तथा मंगल और शनि इन दो ग्रहोंकी दृष्य या मनके स्थानपर दृष्टियां हैं। इस योगमें स्त्री न रहे।

(४) शुक्र गुरु इन दोनों शुभ ग्रहों तथा आचार्योंका शुभ योग नवपंचम योग है इसलिये प्रत्येक बातको बुद्धिकी कसौटीपर कस लेना जातकका स्वाभाविक गुण रहेगा।

(५) चन्द्रगुरुका समसप्तक होनेसे विचारोंमें निर्मलता रहेगी।

(६) राहु मंगलका समसप्तक योग होनेसे तथा सूर्य मंगल जैसे क्रूर और नीचस्थ ग्रहोंका केन्द्र योग होनेसे जातकके कभी कभी उद्विग्नता पैदा होनेके कारण बनते रहेंगे परन्तु यह अन्य बलवान शुभ योगोंके कारण क्षणिक होंगे।

(७) भाग्य और धर्म भवनका मालिक शुक्र अपने घरको पूर्ण दृष्टिसे देखता है इसलिये इसमें न्यूनता नहीं आने देगा। परन्तु व्ययेश सूर्यकी दृष्टि होनेसे निर्ग्रन्थ होनेकी भावना होते हुए भी यह पद धारण कर सकेंगे।

(८) विद्याभवनका मालिक शनि तथा भाग्येश शुक्र इन दोनों परम मित्रोंका त्रिकोणेश होकर नवमपंचम योग हुआ है। इस योगमें जातक अपनी विद्याका पूर्ण उपयोग करता हुआ धर्ममें विशेष रुचि रखेगा यह योग इस पत्रिकामें बड़े महत्वका है।

अन्तमें मेरी तो हार्दिक भावना है कि आपका स्वास्थ्य सदैव ठीक रहे जिससे आप स्वयंका भी कल्याण कर सकें और जन-साधारण भी आपके उपदेशको ग्रहण करके अपना जीवन सफल बना सके।

संवत् २०१०

—मूलचन्द जैन
मुजफ्फरनगर।

(२)

मिद्रात्मनो रूपं तादृग्रूपं निजात्मनः ।
विलष्टस्तु संसारे-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

...क् रूपं सिद्धात्मनः अस्ति शक्तितः तादृक् रूपं निजात्मन...
...न तु संसारे भ्रान्त्या विलष्टः, अधुना अभ्रान्तः सन् सं...
...मिं स्वयं सुखी स्याम् ॥

...स्वरूप सिद्धात्माका है, शक्तिकी अपेक्षामें वैसा...
...रूप निज आत्माका है, परन्तु संसारमें भ्रमसे क्लेश...
...प्राप्त हुआ, अब भ्रमरहित होता हुआ मैं अपनेमें...
...नेके लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(३)

...तो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयोः ।
...द्वेषपरिधाताऽऽसम्-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

...निश्चयतो भिन्नः एकः अपि अहं योगोपयोगयोः कर्ता च रागद्वेष...
...विधाता आसम्, अधुना अभ्रान्तः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी...
...स्याम् ॥

...समस्त पदार्थसे न्यारा अकेला होनेपर भी मैं योग...
...अथवा आत्माके प्रदेश परिस्पन्द तथा उपयोगका कर्ता...
...और राग द्वेष करने वाला हुआ । अब भ्रान्ति रहित...
...होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ।

(४)

न करोमि न चाकार्षम् न करिष्यामि किञ्चन ।
विकल्पेन मुधा भ्रान्तः-स्यां स्वस्मिं स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं किञ्चन न करोमि च न किञ्चन अकार्षम् न किञ्चित् करिष्यामि किन्तु मुधा विकल्पेन भ्रान्तः अधुना निर्विकल्पः सन् स्वे स्वस्मिन् स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-मैं न कुछ करता हू और न मैंने कुछ किया तथा न कुछ करूंगा, परन्तु व्यर्थ विकल्पसे दुखी हुआ हू, अब निर्विकल्प होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(५)

स्वरागवेदनाविद्धश्चेष्टे स्वस्यैव शान्तये ।
नोपकुर्वे च नो शान्तिः- स्यां स्वस्मिं स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं स्वरागवेदनाविद्धः सन् स्वस्यैव शान्तये चेष्टे, न परान् उपकुर्वे, च नो शान्तिः भवति, अधुना सद्दृष्टिः सन् स्वे स्वस्मिं स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मैं अपने रागकी वेदनासे वेधा हुआ अपनी ही शान्तिकेलिये चेष्टा करता हूं, न दूसरोंका उपकार करता हू और न उससे शान्ति होती है, ...
होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्व...

(६)

यातिं नैतो न चायाति जातुचित्किञ्चिदन्यतः ।
खिन्नो हीनाधिकंमन्यः···स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—न इतः जातुचित् किञ्चित् याति न च अन्यतः किञ्चित् आयाति, अहं हीनाधिकंमन्यः वृथा खिन्नः अधुना सद्दृष्टि सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ—न यहांसे (निज आत्मामें) कभी कुछ जाता है और अन्य पदार्थमें कुछ आता है, मैं अपनेको कम व अधिक मानता हुआ व्यर्थ खिन्न हुआ हूं, अब सद् दृष्टि वाला होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(७)

स्वातन्त्र्यं वस्तुनो रूपं तत्र कः किं करिष्यति ।
हानिर्मे किं विकल्पेषु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—वस्तुनः स्वातन्त्र्यं वस्तुनः रूपं अस्ति, तत्र कः किं करिष्यति किं विकल्पेषु मे हानि , अधुना स्वातन्त्र्यदृष्टिः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—वस्तुकी स्वतन्त्रता वस्तुका स्वरूप है उस स्वरूपमें कोई क्या करेगा ? निश्चयमें विकल्पोंके कारणही मेरी हानि है अब स्वातन्त्र्यदृष्टिवाला होता हुआ मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(८)

ज्ञाता द्रष्टाहमेकोऽस्मि निर्विकारो निरञ्जनः ।
नित्यः सत्यः समाधिस्थः…स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं ज्ञाता द्रष्टा एकः अस्मि, निर्विकारः निरञ्जनः अस्मि नित्यः सत्यः समाधिस्थः अस्मि, अतः समाधिस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं जाननेवाला व देखनेवाला हूं, अकेला हूं, विकार रहित व मलरहित हूं, अविनाशी केवलकी सत्तामें होने वाला साम्य अवस्थामें स्थित हूं, इसलिये समता परिणाममें ठहर कर मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(९)

अमरोऽहमजन्माहं निःशरीरो निरामयः ।
निर्ममो नैर्जगत्योऽहं…स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं अमरः अजन्मा अस्मि, निःशरीरः निरामयः अस्मि, अहं निर्ममः नैर्जगत्यः अस्मि, अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं अमर हूं, अजन्मा हूं, शरीर रहित व रोगरहित हूं, जिसका जगतमें कुछ नहीं है ऐसा, तथा जो जगतका कुछ नहीं है ऐसा मैं हूं, इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(१०)

नोपद्रवो न मे द्वन्द्वो निर्विकल्पोऽपरिग्रहः ।
दृश्यः कैवल्यदृष्ट्याऽहं…स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्

अन्वय-मे उपद्रवः न अस्ति, द्वन्द्वः न अस्ति अहं निर्विकल्पः
अपरिग्रहः अस्मि, कैवल्यदृष्ट्या अहं दृश्यः अस्मि
कैवल्यदृष्ट्या स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मेरे उपद्रव नहीं हैं, द्वन्द्व नहीं है, मैं विकल्प र
परिग्रह रहित हूं, केवल अकेलेकी दृष्टिसे मैं
के योग्य हू, इसलिये केवल अकेलेकी दृष्टि
अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(११)

निर्वंशश्चेतनावंशो निर्गृहश्चेतनागृहः ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्

अन्वय-अहं निर्वंशः चेतनावंशः अस्मि, निर्गृहः चेतनागृहः
चेतनाऽन्यत् किञ्चन न अस्ति, ततः स्वे स्वस्मै
स्याम् ॥

अर्थ-मैं वंश रहित हू, तथा चेतना ही जिसका वंश है
मैं घर रहित हूं, तथा चेतना ही जिसका घर है
है। मेरा चेतनासे अतिरिक्त कुछ भी नहीं
लिये अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(१४)

निष्कीर्तिश्चेतनाकीर्तिर्निष्कृतिश्चेतनाकृतिः ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चिन् ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अहं निष्कीर्तिः चेतनाकीर्तिः अस्मि, निष्कृतिः चेतनाकृतिः अस्मि मे चेतनान्यत् किञ्चिन् न अस्ति, अतः चैतन्यं चेतमानः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ—मैं कीर्ति रहित हूं व चेतना ही है कीर्ति जिसकी ऐसा हूं, और कृतिरहित हूँ, व चेतना ही जिसकी कृति है ऐसा हूं, मेरा चेतनासे अन्य कुछ भी नहीं है, अतः चैतन्यभावको ही चेतता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपनेआप सुखी होऊँ ॥

(१५)

जीविताशा प्रतिष्ठाशा विषयाशा जनैषणा ।
आभिर्मुग्धो विनष्टोऽहं ...स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—जीविताशा, प्रतिष्ठाशा, विषयाशा, जनैषणा आभिः मुग्धः अ[illegible] विनष्टः, अधुना आभ्यः निवृत्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जीनेकी आशा यश प्रतिष्ठाकी आशा विषय प्राप्तिकी आशा लोक अच्छा कहें इस प्रकारको आशा, इनसे मोहित हुआ मैं विनष्ट हुआ अब उनसे निवृत्त होकर मैं अपनेमें अप[illegible] लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२०)

अहंकाराहिना दष्टः कर्ता भोक्ता भवेत्त मे ।
ममत्वाहंत्वभावोऽपि ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्

अन्वय—अहंकाराहिना दष्टः अयं जीवः कर्ता भोक्ता भवेत् किन्तु मे ममत्वाहंत्वभावः अपि न अस्ति, अतः अहंकारत्वं त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—अहंकाररूपी सर्पसे डसा हुआ यह जीव कर्ता भोक्ता होता है। किन्तु मेरे तो ममत्व और अहंत्व भाव भी नहीं है, इसलिये अहंकारपनेको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२१)

वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन्न वर्तते ।
यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यः भावः वाञ्छन्, गृह्णन् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन् न वर्तते, च यत्र आस्ते तत्स्वसाम्राज्यं अस्ति तस्मिन् ज्ञायकस्वभावमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जो भाव वाञ्छा करताहुआ ग्रहण करता हुआ त्याग करता हुआ हर्ष करता हुआ शोक करता हुआ क्रोध करता हुआ नहीं रहता है, और जिस स्वभावमें ठहरता है, वह आत्मा का साम्राज्य है, उस ज्ञायकभावमात्र अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१८)

ज्ञात्वा रागफलं दुःखं जीवानां भ्रमतामिह ।
रागं मुञ्चानि नो ? मुक्त्वा ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं

अन्वय-इह भ्रमतां जीवानां दुःखं रागफलं ज्ञात्वा किं अहं रागं मुञ्चानि ? मोक्ष्यामि एव नु रागं मुक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ-इस लोकमें भ्रमण करने वाले जीवोंके दुःखको रागका फल जानकर क्या मैं रागको नहीं छोड़ूँ ? नियमसे छोड़ूँ ही, तब रागको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१६)

द्रष्टारं स्वयमात्मानं पश्य पश्य न चेतरम् ।
तिष्ठानि निर्विशेषं चेत् ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-त्वं स्वयं आत्मानं द्रष्टारं पश्य, इतरं द्रष्टारं न पश्य, यस्मात् आत्मा एव द्रष्टा तस्मात् यदि अहं निर्विशेषं तिष्ठानि चेत् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-तुम स्वयं अपने आपको द्रष्टा देखो, मानो, अन्य किसीको द्रष्टा-देखनेवाला मत देखो, जिस कारण आत्मा ही द्रष्टा है उस कारण यदि मैं विशेष रहित = विकल्प रहित ठहरा रहूँ तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२८)

अहंकाराहिना दष्टः कर्ता भोक्ता भवेत् मे।
ममत्वाहंत्वभावोऽपि ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्

अन्वय-अहंकाराहिना दष्टः अयं जीव कर्ता भोक्ता भवेत् किन्तु मे ममत्वाहंत्वभावः अपि न अस्ति, अतः अहंकारत्वं त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ-अहंकाररूपी सर्पसे डसा हुआ यह जीव कर्ता भोक्ता होता है। किन्तु मेरे तो ममत्व और अहंत्व भाव भी नहीं है, इसलिये अहंकारपनेको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं॥

(२९)

वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हृष्यन् शोचन् कुप्यन् न वर्तते।
यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय-यः भावः वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हृष्यन् शोचन् कुप्यन् न वर्तते, स यत्र आस्ते तत्स्वसाम्राज्यं अस्मिन् ज्ञायकभावमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ-जो भाव वाञ्छा करता हुआ ग्रहण करता हुआ त्याग करता हुआ हर्ष करता हुआ शोक करता हुआ क्रोध करता नहीं रहता है, और जिस स्वभावमें ठहरता है वह स्व का साम्राज्य है, उस ज्ञायकभावमात्र में अपने आप सुखी होऊं॥

(२२)

यदाऽज्ञता तदासीन्मे प्रीतिर्भोगे स्वविभ्रमात् ।
हीनयज्ञोऽपि धावामि ? ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।

अन्वय-यदा मे अज्ञता आसीत् तदा भोगे स्वविभ्रमात् मे प्रीतिः आसीत् अथ ज्ञः अपि अहं हीनयत् किं बहिः धावामि ? ... तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-जिस समय मेरे अज्ञानका असत् भाव था तब भोगमें आत्माका या आत्मीयताका भ्रम होनेसे मेरी प्रीति थी, अब ज्ञानस्वभाव होकर भी-में दीन अर्थात् भ्रमी जीवोंकी तरह क्या आत्माके उपयोगसे बाहर परपदार्थमें दौड़ूँ ! मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप स्वयं सुखी होऊँ ॥

(२३)

ज्ञातृत्वं मयि सर्वेषु स्वायत्तं साम्यसंयुतम् ।
कस्य कः ज्ञातृतां दृष्ट्वा...स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-स्वायत्तं साम्यसंयुतम् ज्ञातृत्वं मयि च सर्वेषु विद्यते, कस्य कः अस्ति, ज्ञातृतां दृष्ट्वा अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-अपने ही आधीन समतासे संयुक्त ज्ञातापन मुझमें और सबमें विद्यमान है, किसका कौन है, इसलिये ज्ञातापनको देखकरके मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३०)

आत्मजागरणं यत्र भावे लोकजागृतिः ।
अहं स ज्ञानमात्रोऽस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यत्र सति आत्मजागरणं भवति च अभावे लोकजागृतिः भवति स ज्ञानमात्रः अहं अस्मि तस्मिन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-जिसके होनेपर आत्मजागरण होता है और अभाव होने पर लोक व्यवहारमें जागरण होता है वह ज्ञानमात्र मैं हूँ, सो अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३१)

अहं स्वं जन्ममृत्यादि सुखं दुःखं नयाम्यहम् ।
मुक्तौ नेता गुरुस्तस्मात्...स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं स्वं जन्ममृत्यादि सुखं दुःखं नयामि च मुक्तौ नेता अपि अहं अस्मि, तस्मात अहं अस्मिन स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-मैं अपनेको जन्म मरण आदि सुख दुःखको प्राप्त कराता हूं और मुक्ति में ले जानेवाला भी मैं हूं, इस कारण मैं ही अपना गुरु हूं सो अब अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३४)

देहे स्वधीधता दुःखं सुखं स्वे स्वस्य चेतनम् ।
सुखं स्वायत्तमेवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–देहे स्वधीधता दुःखम्, स्वे स्वस्य चेतनं सुखं समस्ति च तत् सुखं स्वायत्तं एव अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–शरीरमें अहंबुद्धि होना दुःख है, आत्मामें आत्माका अनुभव होना सुख है, और यह सुख निजके ही आधीन है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३५)

तिर्यङ्नारकदेवानां देहे तिष्ठन् पृथक् तथा ।
नृदेहेऽपि नरो नाहं...स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यथा तिर्यङ्नारकदेवानां देहे तिष्ठन् आत्मा पृथक् तथा नृदेहे अपि तिष्ठन् अहं नरः न, अतः स्वं पृथक्कृत्य स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जैसे तिर्यञ्च, नारकी, देवोंके शरीरमें रहता हुआ शरीरसे भिन्न है उसी प्रकार मनुष्यशरीरमें भी हुआ मैं मनुष्य नहीं हूँ, इसलिये इस पृथक् शरीरसे भिन्न करके मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ

(२८)

यत्र चित्तस्य न क्षोभः स्वे वैकान्ते वसाम्यहम् ।
जनव्यूहे हितं किं मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–जनव्यूहे मे किं हितं ? ततः यत्र चित्तस्य क्षोभः न भवेत् तत्र स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–जनसमूहमें मेरा क्या हित है ? इसलिये जहां चित्तको क्षोभ न होवे ऐसे निज आत्मामें अथवा एकान्तमें मैं र और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२९)

हितैषी हितयत्नाऽस्मि हितज्ञोऽस्म्यहं गुरुः ।
अस्यैव साक्षिनायां शं ··· स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–हितैषी हितज्ञः हितयत्नः अहं अस्मि अस्मात् स्वस्य गुरुः तत्त्वत अहं एव विद्मे अस्य एव साक्षिनायां शं वर्तते अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–हितका चाहनेवाला हितका जाननेवाला हितरूप यत्नमें लगानेवाला मैं हूं, इस कारण स्वका गुरु वास्तवमें मैं ही हूं इसकी छत्रछायामें मैं सुखी हूं, इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४८)

ज्ञानं स्वमेव जानाति सदा स्वात्मगामिना पुनः ।
अहमर्हं विशुद्धिः सन् ... स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्यायम् ॥

अन्वय-ज्ञानं स्व एव जानाति सदा स्वात्मगामिना पुनः अर्हन् स्वतः अर्हविशुद्धिः सन् अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-ज्ञान स्वको ही जानता है सब यह स्व है यह स्वामी है इस तरहकी बात कहांसे हो, इसलिये एक निज अर्हत-शुद्धि होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४९)

ज्ञप्तिमात्रदशायां न दुःखं स्यात्कर्मनिर्जरा ।
सोऽहं ज्ञप्तिमात्रोऽस्मि स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्यायम् ॥

अन्वय-ज्ञप्तिमात्रदशायां दुःखं न स्यात् कर्मनिर्जरा भवति स ज्ञप्तिमात्रः अस्मि, अहं स्वस्मिन् स्वन. स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-जाननेमात्रकी दशामें दुःख नहीं है, कर्मोंकी निर्जरा होती है वह ज्ञप्तिमात्र यह मैं हूं । सो अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४२)

यदुपासे तदाप्तिः स्यादतः शुद्धात्मतां भजे ।
शुद्धाप्तिः शान्तिसम्पत्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं यत् उपासे तदाप्तिः स्यात् अतः शुद्धात्मतां भजे शुद्धाप्तिः शान्तिसम्पत्तिः ततः स्वं स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्

अर्थ–मैं जिसकी उपासना करूं, उसकी प्राप्ति होती इसलि मैं शुद्धात्माको ही भजूँ क्योंकि शुद्ध आत्मभावकी प्रा और शान्तिरूप सम्पत्ति एकही बात है सो शुद्ध स्वरू वाले अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४३)

संयम्याक्षाणि मुक्त्वा च कल्पनां मोहसम्भवाम् ।
अन्तरात्मस्थितः शान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अक्षाणि संयम्य च मोहसंभवाम् कल्पनां मुक्त्वा शान्त अन्तरात्मस्थितः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–इन्द्रियोंको संयमित करके और मोहसे उत्पन्न होनेवाली कल्पनाको छोड़ करके क्षमाशील अन्तरात्मामें स्थित होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४८)

स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्मादभव्यता निश्चयेन मे ।
अस्वभावे कथं पुनः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-मे स्वैकत्वस्य रुचिः वर्तते तस्मात् निश्चयेन मे अभव्यता अस्ति पुनः अस्वभावे कथं पुनः अहं तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मेरे तो निजके एकत्वमें रुचि है इसलिये निश्चयसे मेरे अभव्यपना [तथा ही होनहार] है फिर ऐसी प्रवृत्तिमें जो मेरा स्वभाव नहीं कैसे लगा, मैं तो अब अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४६)

अद्वैतानुभवः सिद्धिर्द्वैतबुद्धिरसिद्धता ।
सिद्धेरन्यश्च पन्था न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अद्वैतानुभवः सिद्धिः द्वैतबुद्धिः असिद्धता, सिद्धेः अन्यः पन्था न अतः अद्वैते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-निज अद्वैतका अनुभव तथा अद्वैत परिणमन ही सिद्धि है, द्वैतबुद्धि असिद्धि है । सिद्धिका और दूसरा कोईभी मार्ग नहीं है, अतः निज अद्वैत स्वरूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४६)

सद्दृष्टिज्ञानचारित्रैकत्वं मुक्तिरदः सुखम् ।
तच्च ज्ञानमयं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-सद्दृष्टिज्ञानचारित्रैकत्वं मुक्तिः अस्ति, अदः सुखं च ज्ञानमयं तस्मात् ज्ञानमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एकपना मु... है यह ही सत्य सुख है और वह एकत्व ज्ञानमय है ... ज्ञानस्वरूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४७)

तत्त्वतो ज्ञानमात्रोऽहं क्व विकल्पावकाशता ।
ततोऽहं निर्विकल्पः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-तत्त्वतः अहं ज्ञानमात्रः अस्मि तत्र विकल्पावकाशता क्व ... ततः निर्विकल्पः सन् अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-वास्तवमें मैं ज्ञानमात्र हूँ उस मुझमें विकल्पोंका ... ही कहां है इसलिये अब निर्विकल्प होता हुआ मैं अ... अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(५८)

स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्मात्स्वस्थता निरपेक्षेण मे ।
स्वस्वभावे कथं पुनः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-मे स्वैकत्वस्य रुचिः तस्मात् निरपेक्षेण मे स्वस्थता अस्ति पुनः स्वस्वभावे कथं पुनः अहं तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मेरे तो निजके एकत्वमें रुचि है इसलिये निरपेक्ष मेरे स्वस्थता [तथा ही होनहार] है फिर ऐसी प्रवृत्तिमें जो मेरा स्वभाव नहीं कैसे लगा, मैं तो अब अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(५९)

अद्वैतानुभवः सिद्धिर्द्वैतबुद्धिरसिद्धता ।
सिद्धेरन्यश्च पन्था न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अद्वैतानुभवः सिद्धिः द्वैतबुद्धिः असिद्धता, सिद्धेः अन्यः पन्था न अतः अद्वैते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-निज अद्वैतका अनुभव तथा अद्वैत परिणमन ही सिद्धि है, द्वैतबुद्धि असिद्धि है। सिद्धिका और दूसरा कोईभी मार्ग नहीं है, अतः निज अद्वैत स्वरूप अपनेमें आ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४०)

स्वैकत्वं मंगलं लोके उत्तमं शरणं महत् ।
रक्षादुर्गं तदेवास्मि स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-स्वैकत्वं मंगलं, लोके उत्तमं, महत् शरणं वर्तते, तत् एव रक्षा-दुर्गं अस्ति, अतः स्वैकत्वमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-स्व का एकपन ही मंगल है लोकमें उत्तम है, महान शरण स्वरूप है, यह ही रक्षाका किला है। इसलिये स्वके एकत्व स्वरूप अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४१)

स्वैकत्वमौषधं सर्वक्लेशनाशनदक्षकम् ।
चिन्तामणिस्तदेवास्मिन् स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-स्वैकत्वं सर्वक्लेशनाशनदक्षकम् औषधमस्ति, तत् एव चिन्तामणिः अस्ति, अतः स्वैकत्वमये अस्मिन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-स्व का एकपन सर्व क्लेशोंके नाश करनेमें दक्ष औषध है यह स्वैकत्व ही चिन्तामणि है इस लिये स्वके एकपन स्वरूप इस निज आत्मामें मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४२)

ज्ञायकत्वे विकारः-क रागादेः सन्निधावपि ।
सोऽहं ज्ञायकमात्रोऽस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-रागादेः सन्निधौ अपि ज्ञायकत्वे विकारः क्व अस्ति, सः ज्ञायकमात्रः अहम् अस्मि, तस्मिन् ज्ञायके स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-राग आदिकी निकटता होनेपर भी ज्ञायक स्वरूपमें विकार कहां है ? वह ज्ञायकमात्र मैं हूं सो उस ज्ञायक निज आत्मामें अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४३)

दुःखी किं ? विवशः किं ? मेऽत्रैव न्यायो विधिर्जगत् ।
सुखागारोऽप्ययं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-हे आत्मन् ! दुःखी किं ? विवशः किं ? मे अत्र एव न्यायः अत्र एव विधिः अत्र एव जगत् अस्ति, सुखागारः अपि अयं एव अहं तस्मात् सुखस्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-हे आत्मन् ! दुखी क्यों ? विवश क्यों ? मेरा तो इस मुझही आत्मामें न्याय है यहां ही विधि विधान है यहां ही मेरी दुनियां है सुखका आगार भी यह ही मैं हूं इसलिये सुख स्वरूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ

(५४)

ज्ञानपिण्डोऽन्यभिन्नोऽहं निर्विकारी स्वभावतः ।
स्वतन्त्रः सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं ज्ञानपिण्ड, अन्यभिन्नः स्वभावतः निर्विकारी सहजानन्दः अस्मि अतः स्वतन्त्रः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं ज्ञानका पिण्ड अन्यसे भिन्न स्वभावसे विकार रहित स्वाभाविक आनन्दमय हूं इसलिये स्वके ही आश्रित होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(५५)

निजचेष्टाफलं ह्यन्ये दृष्टिः संसार उच्यते ।
विज्ञाय तत्त्वतस्तत्त्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–हि निजचेष्टाफलं अन्ये अस्ति इति दृष्टिः संसारः उच्यते, अ... तत्त्वं विज्ञाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–निश्चयसे "अपनी चेष्टाका फल अन्य पदार्थमें ... इस दृष्टिको ही संसार कहा जाता है, अतः वास्त... तत्त्वको जानकर मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ

(६०)

रागादि पीडयेन्नाथ्यमाविष्टो ज्ञानसागरे ।
अतो ज्ञानेऽवगाह्याहं स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-रागादि मायम् पीडयेत् यावत् ज्ञानसागरे न आविष्टः अतः ज्ञाने अवगाह्य अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-राग आदि विभाव तबतक पीड़ा करते जबतक ज्ञानरूप समुद्रमें प्रविष्ट नहीं हुआ इसलिये ज्ञानमें प्रवेश करके मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(६१)

स्वभावः सिद्धता तु पर्यायाः कर्मविक्रमाः ।
अहं स्वविक्रमं कुर्यां स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-सिद्धता स्वभावः तु एते पर्यायाः कर्मविक्रमाः सन्ति अहं तु स्वविक्रमं कुर्याम् च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-अपने गुणोंकी प्राप्ति रूप सिद्धता स्वभाव है परन्तु ये पर्यायें कर्मके विक्रम हैं, मैं तो स्वका विक्रम-पुरुषार्थ करूं और अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊं ॥

" समाप्तोऽयम् प्रथमोऽध्यायः "

इति श्री सदध्यात्मयोगिना शान्तमूर्तिना न्यायतीर्थेन सिद्धान्त-न्यायसाहित्य शास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द-स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायामात्मरतिपरिणति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

(४८)

पूर्णदृग्ज्ञानसम्मौख्यी सिद्धात्मा देशतोऽप्यहम् ।
पूर्णश्च भवितुं शक्यः ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।

अन्वय-सिद्धात्मा पूर्णदृग्ज्ञानसम्मौख्यो अहं अपि देशतः दृग्ज्ञान
सौख्यी च पूर्णः भवितुं शक्यः अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्

अर्थ-सिद्धात्मा पूर्णदर्शन ज्ञानशक्ति सुखस्वरूप हैं मैं भी
देशसे व्यक्तिकी अपेक्षा दर्शन ज्ञान शक्ति सुख द
हूँ और पूर्ण होनेकेलिये समर्थ हूं अतः अपनेमें
लिये स्वयं सुखी होऊं ॥

(४९)

निर्द्धूयाज्ञानजान्धं स्वं दृष्ट्वा ध्यानाग्निना विधिम् ।
दहानि निष्कलङ्कः सन्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अज्ञानजान्धं निर्द्धूय स्वं दृष्ट्वा ध्यानाग्निना विधिम् द...
निष्कलङ्कः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले अन्धकारको नष्ट करके अपने
आत्माको देख करके ध्यानरूपी अग्निकेद्वारा कर्म
क्रियाको जलाऊं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप
सुखी होऊं ॥

ओम्‌ शिवोऽहम्‌

द्वितीयोऽध्यायः

आरम्भ

(१)

यः संयोगजया दृष्ट्या भाति संयोगजः किल ।
तौ नाहं तौ मे न तौ हित्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्‌

अन्वय-संयोगजया दृष्ट्या संयोगजः भाति किल तौ अहं न मे ...
तौ हित्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्‌ ।

अर्थ-संयोगसे होने वाली दृष्टिके द्वारा जो संयोगज पदार्थ
भासित होता है निश्चयसे वह दोनों अर्थात्‌ संयोग
व संयोगज पदार्थ मैं नहीं हूं। मेरे वे दोनों नहीं
लिये उनमें लक्ष्य हटाने रूप उपायसे उन दोनोंको
अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(२)

नाहमन्यत्र नान्यस्य न नष्टो न बहिर्गतः ।
किन्तु ज्ञायकभावोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्‌ ॥

अन्वय-अहं अन्यत्र न अन्यस्य न न नष्टः न बहिर्गतः किन्तु ज्ञा...
एवः अहम्‌ स्वे स्वस्मै स्वयम्‌ सुखी स्याम्‌।

अर्थ-मैं अन्य जगह नहीं हूं, अन्यका नहीं हूं न नष्ट
न बाहर गया हूं किन्तु ज्ञायक भाव स्वरूप यह मैं अपनेमें
अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(७७)

जागृतिः शयनं पानमशिनं वाग्दर्शनं श्रुतिः ।
अप्तिक्रियस्य किं कृत्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अप्तिक्रियस्य मे जागृतिः शयन पान अशनं वाक् दर्शनं श्रुति आदि किं कृत्यं अस्ति अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम ।

अर्थ-अप्ति ही है क्रिया जिसकी ऐसे मुझ आत्माके जागरण शयन पान भोजन वचन दर्शन श्रवण आदि क्या कृत्य हैं ? नहीं तब फिर मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(७८)

सङ्कल्पेऽजनि संसारो ज्ञाने नश्यति कल्पितः ।
निर्विकल्पे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-सङ्कल्पे संसारः अजनि च कल्पितः सः संसारः ज्ञाने नश्यति अतः निर्विकल्पे रतः भूत्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-सङ्कल्पमें ही संसार पैदा हुआ और कल्पित वह संसार ज्ञान होते ही नष्ट हो जाता है इसलिये निर्विकल्प स्वरूप ज्ञानमें रत होकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३७)

परे दृष्टे दृष्टः न स्वः-स्वे दृष्टे न विकल्पना ।
अविकल्पे न सन्तापः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-परे दृष्टे स्वः दृष्टः न भवति स्वे दृष्टे विकल्पना न भवं
अविकल्पे सन्तापः न भवति अतः अविकल्प स्वरूपे स्वे स्व
स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-परके देखे जानेपर स्व देखा रहा नहीं रहता । स्वके दे
रहनेपर अन्य कुछ भी कल्पना नहीं रहती कल्पनाओं
अभावमें सन्ताप नहीं होता इसलिये निर्विकल्प स्वरू
अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३८)

मयि सौख्यं मया मे मत् ज्ञप्ति भिन्नं न साधनम् ।
आगृह्णानि कथं पूर्णा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-मे सौख्यं मया मत् मयि विद्यते तस्य साधनम् ज्ञप्ति भिन्नम्
अन्यत् न अस्ति तदा अहं पूर्णा कथं आगृह्णानि स्वे स्वस्मै स्व
सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मेरा सुख मेरेद्वारा मुझसे मुझमें है उसका साधन जाननेकी
क्रियासे भिन्न और कुछ नहीं है तब मैं पूर्तिमें क्या आग्रह
करूं । अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३९)

नाहं देहो न जातिर्मे न स्थानं नच रक्षकाः ।
गुप्तं ज्ञानं प्रपश्यामि स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं देहः न मे जातिः न मे स्थानं न च मे रक्षकाः न अहं तु गुप्तं ज्ञानं प्रपश्यामि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं देह नहीं हूं मेरी जाति नहीं है मेरा स्थान नहीं है और मेरे रक्षक भी कोई नहीं हैं मैं तो अपने गुप्त अर्थात् जो दूसरोंके द्वारा जाना नहीं जा सकता ऐसे ज्ञानको देखूँ और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४०)

क्वान्योऽहं क्व च चिन्ता क्व क्वैकाग्र्यं क्वशुभाशुभम् ।
इमे स्वस्माच्च्युते तर्काः स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–क्व अन्यः क्व अहं च क्व चिन्ता क्व ऐकाग्र्यं क्व शुभाशुभम् इमे स्वस्मात् च्युतेः तर्काः सन्ति अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ–कहां अन्य है कहां मैं हूं और कहां चिन्ता कहां एकाग्रता कहां शुभ कहां अशुभ ये सब अपने आपसे च्युत होनेसे तर्क होते हैं मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४५)

व्यवहारे परावस्था निश्चये ज्ञानमात्रता ।
ज्ञानमात्रे पराशान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-परावस्था व्यवहारे एव निश्चये ज्ञानमात्रता अस्ति। ज्ञानमा
परा शान्तिः अस्ति। अतः ज्ञानमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सु
स्याम् ॥

अर्थ-पर पदार्थकी अवस्था अथवा आत्मकी विभाव अवस
या आत्मा की क्रियाकारक दशा व्यवहार में ही है नि
में तो ज्ञानमात्र अपनेमें अपनेलिये अपने आप सु
होऊँ ॥

(४६)

रागादिवर्णतः प्रत्यग्ज्ञाते ते प्राप्स्यामि शंशिवम् ॥
विकल्पो विघ्नकृद्यातु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-रागादिवर्णतः प्रत्यक् मयि ज्ञाते सति शिवं शं प्राप्स्यामि वि
कृत् विकल्पः यातु अहं हि स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ-रागादि विभाव व वर्णरसादिसे भिन्न मेरे जान लिये जा
शिव स्वरूप सुख प्राप्त करूँगा विघ्न करनेवाला वि
जाओ हटो मैं तो स्वयं स्वके लिये स्वमें सुखी होऊं ॥

(५५)

कः कस्य कीदृशः क्वेति देहमप्यविशेषयन् ।
सहजानन्दसम्पन्नः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–कः कस्य कीदृशः क इति देहं अपि अविशेषयन् अहं सहजानन्द सम्पन्न सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–कौन ? किसका ? कैसा ? कहां ? इस प्रकार देह तकमें भी विशेषण न करता हुआ मैं स्वाभाविक आनन्दसे युक्त होता हुआ अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

इति श्री मदध्यात्मयोगिना शान्तमूर्तिना न्यायतीर्थेन सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायामन्तर्ज्ञानप्रकरणो द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।

[illegible]
स्वभावी अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊँ ॥

(५३)

यत्रवासो रतिस्तत्र तत्रैकत्वं ततोनिजे ।
उषित्वा ज्ञान दृष्ट्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-उपयोगस्य आत्मनः यत्र वासः भवति तत्र रतिः भवति यत्र रतिः भवति तत्र एकत्वं भवति ततः अहं निजे ज्ञानदृष्ट्या उषित्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-उपयोग-स्वरूप आत्माका जहां वास होता है वहां रति हो जाती है जहां रति होती है वहां एकपन हो जाता है इस लिये मैं निज आत्मामें ज्ञान दृष्टिकेद्वारा निवास करके अपनेमे अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(५४)

यज्ज्ञानेन जगन्मन्ये तत्र मे किं तदादृतिः ।
स्वादृतिः सा स्व वृत्तिर्हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यज्ज्ञानेन अहं जगत् मन्ये तत् मे न पुनः किं तदादृतिः स्यात् च स्वादृतिः सा एव या स्ववृत्तिः अतः हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-जिस विशेषज्ञानकेद्वारा मैं जगत्को मान रहा हूँ वह ज्ञान ही मेरा सहज भाव नहीं है तो फिर क्या जगत्में आदर हो? और स्वका आदर यह ही है जो स्वमें वृत्ति हो इसलिये नियमसे स्वयं अपनेमें ही रहकर अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊँ ।

(९)

रागद्वेषौ हि संसारः संसारो दुःखपूरितः ।
संसारतो विरज्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय हि रागद्वेषौ संसारः सः संसारः दुःखपूरितः अस्ति अतः संसारतः विरज्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–निश्चयसे राग और द्वेष संसार है और यह संसार दुःखसे व्याप्त है इस लिये संसारसे अनुराग न करके मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१०)

संसारजो हि पर्यायः संसार उपचारतः ।
त्यक्त्वा तन्मूल संसारं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–हि संसारजः पर्यायः उपचारतः संसारः उच्यते अहं तु तन्मूल संसारं त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–निश्चयसे संसार (रागद्वेष मोह आदि विभाव) से है वाली व्यक्तपर्याय तो उपचारसे संसार कहा जाता है तो उसके मूलभूत संसारको ही उपयोगसे हटाकर अपने अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१३)

प्राप्ता ये दुर्गतेः क्लेशाः भ्रान्त्या भ्रान्त्या मयैवते ।
मुक्त्वा भ्रान्तिमतः कालात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-दुर्गतेः ये क्लेशाः प्राप्ताः ते भ्रान्त्या भ्रान्त्या मया एव प्राप्ताः
अतः कालात् भ्रान्तिं मुक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-दुर्गतिके जो जो क्लेश प्राप्त किये हैं वे भ्रमसे परिभ्रमण करके मैंने ही तो प्राप्त किये हैं अब इस समयसे भ्रान्ति को छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१४)

आपत्पूर्णभवे ह्येको भ्राम्यामि तत्वतोनिजे ।
उपयोगे ततः स्वस्थ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-आपत्पूर्णे भवे अहं एकः भ्राम्यामि च तत्वतः निजे उपयोगे
भ्राम्यामि ततः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-आपत्तियोंसे भरे हुए संसारमें मैं एक यानि अकेला भ्रमण करता हूं और वास्तवमें अपने उपयोगमें भ्रमण करता हूं इसलिये स्व अर्थात् निरपेक्ष उपयोगमें स्थित होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(१५)

देहान्तरं व्रजाम्येको देह मेकस्त्यजाम्यहम् ।
परदृष्टिं हि तत्स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्

अन्वय–अहं एक एव देहान्तरं व्रजामि च एक एव देहं त्यजामि अथवा परदृष्टिं त्यजामि तत् स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मैं एक याने अकेला ही तो शरीरान्तरको जाता हूं और अकेला ही शरीरको छोड़ता हूं अथवा परदृष्टिको छोड़ता हूं इसलिये परदृष्टिको छोड़कर स्वस्थ होता हुआ अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१६)

ोग योग दुःखादौ किञ्चिन्मित्रं न तत्त्वतः ।
विष्टः स्वस्यः मित्रंस्वः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

योग योग दुःखादौ कश्चित् अपि मे मित्रं न वर्तते तु तत्त्वतः ाविष्टः स्वः स्वस्य मित्रं अस्ति अतः स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी ाम् ॥

ोग-संयोग दुःख आदिमें कोई भी मेरा मित्र नहीं है न्तु वास्तवमें निज आत्मामें लीन हुआ मैं ही स्व का मित्र हूं इसलिये स्वके अर्थ सुखी होऊँ ॥

(१७)

यदन्येषां कृते चेष्टे एको भुञ्जे हि तत्फलम् ।
स्वस्मै तत्रापि चेष्टासीत् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–यत् अन्येषां कृते अहं चेष्टे हितरूपं अहं एकः भुञ्जे यतः तत्र
अपि चेष्टा स्वस्मै आसीत् ततः अन्य विकल्पं विहाय स्वे स्वस्मै
स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ– अन्य प्राणियोंके लिये मैं जो चेष्टा करता हूँ निश्चय
उसका फल मैं ही भोगता हूँ क्योंकि वहाँ भी चेष्टा
लिये ही थी इसलिये अन्यके विकल्पको छोड़कर
अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१८)

कारणं सर्वे दुःखानां स्वज्ञानाभाव एवहि ।
येनैको वञ्चितस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–सर्व दुःखानां कारणं हि स्वज्ञानाभाव एव अस्ति येन ए
अपि अहं वञ्चितः तस्मात् स्वं विज्ञाय स्वे स्वस्मै स्वयं सु
स्याम् ॥

अर्थ–समस्त दुःखोंका मूल कारण निश्चयसे अपने आत्म
का अभाव ही है जिससे एक अद्वैत होता हुआ भी
ठगाया गया इस कारण अब मैं अपनेको जानकर अप
अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(७१)

देहादेव यदाभिन्नः कथं बन्धुभिरेकता ।
निमत्तस्य सदा सौख्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यदा अहं देहादेः एव भिन्नः अस्मि तर्हि बन्धुभिः एकता कथं स्यात् विमक्तस्य स्वस्य द्रष्टुः सदा सौख्यं भवति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-जब मैं देह आदिसे भी भिन्न हूँ तब बन्धुजनोंसे मेरी एकता कैसे होसकती है? अर्थात् किसीभी परवस्तुसे मेरा एकपन नहीं हो सकता सर्वसे भिन्न स्वके द्रष्टाके सदा निराकुल सौख्य होता है इस कारण मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(७२)

देहोऽणुप्रजजः स्वात्माऽतीन्द्रियो ज्ञान विग्रहः ।
स्वात्मन्येव स्थिरस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-देहः अणुप्रजजः अस्ति स्वात्मा अतीन्द्रियः ज्ञानविग्रहः अस्ति तस्मात् स्वात्मनि एव स्थिरःसन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-शरीर परमाणुओंके समूहसे जायमान है निज आत्मा अतीन्द्रिय तथा ज्ञान ही जिसका शरीर है ऐसा है इस लिये निज आत्मामें ही स्थिर होता हुआ मैं अपनेमें अपने द्वारा अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२३)

यैरर्थैर्मम सम्बन्धस्ते स्वरूपात्पृथक् सदा ।
तत्स्व दृष्ट्याऽसुखं तेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यैः अर्थैः मम सम्बन्धः अस्ति ते स्वरूपात् सदा पृथक् सन्ति तत्स्वदृष्ट्या असुखं भवति तेन स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ-जिन जिन अर्थोंके साथ मेरा सम्बन्ध है वे सब स्वके स्वरूपसे सदा भिन्न हैं उनमें आत्माकी दृष्टिमें दुःख होता है, इसलिये मैं अपनेमें अपनेद्वारा अपने अर्थ सुखी होऊँ ॥

(२४)

पलास्थिरुधिरैर्देहे स्वबुद्ध्या क्लेशभाग्भवेत् ।
तत्र रागेणको लाभः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-पलास्थिरुधिरे देहे स्वबुद्ध्या पापी क्लेशभाग् भवेत् तत्र रागेकः अपि लाभः न अस्ति । अहं तु स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ-मांस हड्डी रुधिर (खून) आदि हैं जिसमें ऐसे इस देहमें स्व आत्माकी बुद्धि करनेसे प्राणी क्लेशका पात्र होता है उस देहमें राग करनेसे कोई लाभ नहीं है, तो अपनेद्वारा अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२९)

शुभः कषायमान्द्येनाऽशुभस्तीव्र कषायतः ।
अकषायेनशं नित्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-कषायमान्द्ये न शुभः तीव्रकषायतः अशुभः भवति च अकषायेन स्वीयं शं विलसति मम अकषायः भूत्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-कषायकी मन्दतासे शुभ प्रवर्तन अथवा शुभबन्ध होता है और तीव्र कषायसे अशुभ प्रवर्तन अथवा अशुभबन्ध होता है और अकषाय भावसे आत्माके निज सहज सुख विलासको प्राप्त होता है इसलिये कषाय रहित होकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३०)

मनोवाक्कायवृत्तीनां निवृत्तेरुपदेशनम् ।
स्वस्थित्यै स्वस्थितौशान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-मनोवाक्कायवृत्तिनां निवृत्तेः उपदेशनम् स्वस्थित्यै अस्ति स्वस्थितौ शान्तिः वर्तते तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मन वचन कायकी प्रवृत्तियोंकी निवृत्तिका उपदेश आत्मामें स्थितिके लक्ष्यके लिये होता है और स्वात्मस्थित होनेमें ही शान्ति है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलि अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३१)

मनोवाक्कायप्रवृत्तिश्चेच्छुभैव स्तूपदेशनम् ।
स्वस्थित्यै स्वस्थितौ शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-मनोवाक्कायप्रवृत्तिः भवेत चेत् शुभा एव अस्तु उपदेशनम् स्वस्थित्यै अस्तु हि शान्तिः स्वस्थितौ अस्ति तस्मात् स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मन वचन कायकी प्रवृत्ति होती हो तो शुभ ही होओ तथैव उपदेश स्वकी स्थितिके लक्ष्यसे होओ निश्चयसे शान्ति स्वकी स्थितिमें ही है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३२)

शुद्धोपयोगलक्ष्येनात्मा स्वयं रक्ष्यते सदा
स्वस्मिन् स्वमेव वेत्स्य स्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-शुद्धोपयोग लक्ष्ये न आत्मा स्वयं रक्ष्यते च सदा स आत्मा स्वस्मिन् स्वं एव वेत्ति अस्मात् शुद्धोपयोग स्वभावे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-शुद्ध उपयोगके लक्ष्यसे आत्मा स्वयं रक्षित हो जाता है और उस समय वह आत्मा अपनेमें अपनेको जानता रहता है अतः शुद्धउपयोगस्वभावी मैं अपनेमें अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३७)

अग्निना काञ्चनं यद्वत् तप्यमान स्तपोऽग्निना ।
शुद्धीभूय लभे स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अग्निना काञ्चनं यद्वत् तपोऽग्निना तप्यमानः शुद्धीभूय स्वास्थ्यं लभे च स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ–अग्निके द्वारा सुवर्णकी तरह तपरूपी अग्निकेद्वारा तपता हुआ शुद्ध होकर स्वास्थ्य अर्थात् स्वकी सहज स्थितिको प्राप्त करूँ और अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३८)

विरागपरिणत्या मे जायते कर्मणां क्षयः ।
रागभिन्नमतो विन्दन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–मे विरागपरिणत्या कर्मणांक्षयः जायते अतः रागभिन्नं स्वं विन्दन्, स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ–मेरी विराग परिणतिसे कर्मोंका क्षय अर्थात् पृथक् भवन स्वयं हो जाता है इसलियेर ागादिवि भावसे भिन्न अपनेको अनुभव करता हुआ मैं अपनेद्वारा अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४७)

आत्मयाथात्म्यविज्ञानं दुर्लभादपि दुर्लभम् ।
लब्धं रंस्ये च तत्रैव स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-आत्मयाथात्म्यविज्ञानं दुर्लभात् अपि दुर्लभम् अस्ति अहं हि तत् एव लब्धे च तत्र एव रंस्ये च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ- आत्माके यथार्थ स्वरूपका बोध दुर्लभसे भी दुर्लभ है मैं तो उस आत्मज्ञानको प्राप्त करूं और आत्मामें ही रमण करूं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४८)

यस्य ज्ञायकभावस्य स्वस्य वित्तिं विना जगत् ।
ज्ञातं व्यर्थं हितं ज्ञात्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यस्य ज्ञायकभावस्य स्वस्य वित्तिं विना ज्ञातं समस्तं अपि जगत् व्यर्थं अस्ति तस्मात् हितं ज्ञात्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ-जिस ज्ञायक भाव स्वरूप स्वके ज्ञानके बिना जाना हुआ समस्त भी जगत् व्यर्थ है इसलिये हितको जानकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

इति श्री मदध्यात्मयोगिना शान्तमूर्त्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धान्त-न्यायसाहित्यशास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायां भावनाप्रकरणरूपस्तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।

(५४)

लोके द्रव्याण्यनेकानि वर्तन्ते किन्तु यं निजे ।
अहन्तां किं पुनः कुर्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–लोके द्रव्याणि अनेकानि वर्तन्ते किन्तु अहं यं निजे अस्मि पुनः किं अहन्ता कुर्याम् अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ–लोकमें द्रव्य अनेक हैं किन्तु निश्चयसे तो निज हूँ फिर क्या क्या अहंकार करूं मैं तो अपनेमें अपने अपने आप सुखी होऊँ ॥

(५५)

अक्षिपूर्णत्वमज्जातिधियादिदुर्लभवस्तुनि ।
प्राप्ते लाभो यदि स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अक्षिपूर्णत्व मज्जातिधियादिदुर्लभवस्तुनि प्राप्ते लाभः तदा म यदि स्वस्थ स्याम अतः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्या

अर्थ–इन्द्रियोंकी पूर्णता, उत्तमजाति बुद्धि आदि दुर्लभ प्राप्त होनेपर लाभ तब माना जावे जब कि मैं स्वस्थ इसलिये अब स्वस्थ होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये आप सुखी होऊँ ॥

(५७)

आत्मयाथात्म्यविज्ञानं दुर्लभादपि दुर्लभम् ।
लब्धं रमे च तत्रैव स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-आत्मयाथात्म्यविज्ञानं दुर्लभात् अपि दुर्लभम् अस्ति अहं तत् एव लब्धे च तत्र एव रमे च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ- आत्माके यथार्थ स्वरूपका बोध दुर्लभसे भी दुर्लभ है मैं तो उस आत्मज्ञानको प्राप्त करूं और आत्मामें ही रमण करूं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(५८)

यस्य ज्ञायकभावस्य स्वस्य वित्तिं विना जगत् ।
ज्ञातं व्यर्थं हितं ज्ञात्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यस्य ज्ञायकभावस्य स्वस्य वित्तिं विनाज्ञातं समस्तं अपि जगत् व्यर्थं अस्ति तस्मात् हितं ज्ञात्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ-जिस ज्ञायक भाव स्वरूप स्वके ज्ञानके बिना जाना हुआ समस्त भी जगत् व्यर्थ है इसलिये हितको जानकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

इति श्री मदध्यात्मयोगिना शान्तमूर्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धान्त-न्यायसाहित्यशास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लकमनोहरवर्णिना सहजानन्द स्वामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायां ...
समाप्तः ।

(५)

आशा त्यागोहि मे बन्धुर्मित्रंत्राता गुरुः पिता ।
तस्यैव शरणं सत्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-हि आशा त्यागःमे बन्धुः आशा त्यागःमे मित्रं त्राता गुरुः पित
अस्ति तस्य एव शरणं सत्यं अस्ति अतः आशां विमुच्य स्व
स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ-निश्चयसे आशाका त्याग ही मेरा बन्धु है, आशात्याग
ही मेरा मित्र है, रक्षक है, गुरु है, पिता है, उस ही
शरण सच्चा है इसलिये आशाको छोड़कर मैं स्व
अपनेमें अपने अर्थ सुखी होऊँ ॥

(६)

नैराश्येऽपिहि नैराश्यं तस्य का तुलनाभुवि ।
अतो नैराश्यमालम्ब्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-हि यस्य नैराश्ये अपि नैराश्यं अस्ति तस्यभुवि का तुलना विध
अतः नैराश्यं आलम्ब्य स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ-निश्चयसे जिस आत्माके नैराश्य अर्थात् आशाके अभा
या मोक्षमें भी नैराश्य (आशाका अभाव) है उस आत
की लोकमें क्या तुलना हो सकती है इसलिये नैरा
का अवलम्बन करके मैं स्वयं ही अपनेमें अपने अर्थ सु
होऊँ ॥

(१५)

भूतो भवेषु सम्पन्नो न तुष्टोऽभूदनर्थता ।
मायाविनीं किमाशासे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

न्वय-अहं भवेषु सम्पन्नः भूतः किन्तु तुष्टः न अभून अपितु अनर्थता एवभूत् तर्हि मायाविनीं किं आशासे अहं तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

र्थ-मैं अनेक भवोंमें लौकिक विभूतियोंसे सम्पन्न हुआ किन्तु सन्तुष्ट नहीं हुआ बल्कि अनर्थ ही हुआ । तब मायाविनी विभूतिकी मैं क्या आशा करूं मैं तो अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(१६)

पुण्यापुण्यफलं दृश्य ,मदृश्याचिच्चमत्कृतिः ।
वीततृष्णस्य स्वस्थस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

न्वय-दृश्यं एतत् सर्वं पुण्यापुण्यफलं अस्ति च वीततृष्णस्य आत्मन. चिच्चमत्कृतिः अदृश्या अस्ति सा स्वस्थस्य प्रतिभाति ततः स्वस्थः सन् एव स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

र्थ-दिखनेवाला यह सब पुण्य और पापका फल है और तृष्णा रहित आत्माकी चैतन्य चमत्कार रूप अलौकिक विभूति अदृश्य है वह निज आत्मामें स्थित होने वालेके अनुभव इसलिये मैं तो स्वस्थ होता हुआ अपनेमें अपने मुखी होऊँ ॥

(१३)

तात्पर्येऽतात्पर्येऽपिवस्तूनां वियोगो नार्थकृत् ततः ।
यौततृष्णः स्वभावो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–तात्पर्ये अपि अतात्पर्ये वस्तूनां वियोगः अर्थकृत् न अपि यौततृष्ण मे स्वभाव अत. स्वभावमयं स्वे स्वस्मै स्वयं सु स्याम ॥

अर्थ–तृष्णा होनेपर अथवा तृष्णा न होनेपर दोनों अवस्था में वस्तुओंका वियोग अर्थकारी नहीं है अर्थात् व है वह तृष्णा न होने रूप परिणाम मेरा स्वभाव ही है लिये स्वभावमय अपने आपमें अपनेअर्थ स्वयं सु होऊँ ॥

(१४)

पूर्यते पुण्यकामार्थैर्न किञ्चिन्मे ततोहि तान् ।
त्यक्त्वात्मन्येवतिष्ठेयम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–मे पुण्य कामार्थैः किञ्चित् अपि न पूर्यते ततःहि तान् त्यक्त्वा आत्मनि एव तिष्ठेयम च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ–मेरा पुण्य, काम व धनों से कुछ भी पूरा नहीं पड़ता इस लिये नियमसे मैं उनको त्यागकर आत्मामें ही रहूँ और अपनेमें अपनेअर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(१५)

भूतो भवेषु सम्पन्नो न तुष्टोऽभूदनर्थता ।
मायाविनीं किमाशासे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं भवेषु सम्पन्नः भूतः किन्तु तुष्टः न अभूत् अपितु अनर्थता एवअभूत् तर्हि मायाविनीं किं आशासे अह तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मैं अनेक भवोंमें लौकिक विभूतियोंसे सम्पन्न हुआ किन्तु सन्तुष्ट नहीं हुआ बल्कि अनर्थ ही हुआ। तब माया-विनी विभूतिकी मैं क्या आशा करूं मैं तो अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(१६)

पुण्यापुण्यफलं दृश्य मदृश्याचिच्चमत्कृतिः ।
वीततृष्णस्य स्वस्थस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-दृश्यं एतत् सर्वं पुण्यापुण्यफलं अस्ति च वीततृष्णस्य आत्मन चिच्चमत्कृतिः अदृश्या अस्ति सा स्वस्थस्य प्रतिभाति तत स्वस्थः सन् एव स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-दिखनेवाला यह सब पुण्य और पापका फल है और तृष्णा रहित आत्माकी चैतन्य चमत्कार रूप अलौकिक विभूति अदृश्य है वह निज आत्मामें स्थित होने वालेके अनुभ गम्य है इसलिये मैं तो स्वस्थ होता हुआ अपनेमें अप अर्थ स्वयं सुखी होऊं ॥

(२१)

भोग मोक्षपिणोऽनेके वाञ्छाहीनो हि दुर्लभः ।
स एव सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-भोग मोक्षेपिणः अनेके सन्ति तु वाञ्छाहीनः दुर्लभः ह हि स एव सहजानन्दः वर्तते अतः वाञ्छाहीन स्वभावे स्वे स स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-भोग और मोक्षके चाहने वाले अनेक हैं परन्तु व रहित पुरुष दुर्लभ है निश्चयसे वह वाञ्छा रहित आ ही स्वाभाविक आनन्दमय है इसलिये मैं तो वाञ्छा स्वभाव मय निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयं सुखी होउं

(२२)

ज्ञाने रतस्य धर्मार्थ काम मोक्षे जनौ मृतौ ।
हेयादेयेऽपिचिन्ता न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-ज्ञानेरतस्य आत्मनः धर्मार्थकाममोक्षे जनौ मृतौ अपि चिन्ता न अस्ति अतः ज्ञानरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ-ज्ञानमें लीन हुए आत्माके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जन्म, मरण आदिमें कहीं भी चिन्ता नहीं है इसलिये ज्ञान स्वरूप निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(२३)

लाभेऽपि भूतिकीर्तीनां तत्त्यागेन विना न शम्।
प्रत्याख्यानमये ज्ञाने स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय-भूतिकीर्तीनाम् लाभे अपि तत्त्यागेन विना शं न भवति अतः प्रत्याख्यानमये ज्ञाने स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ-सम्पत्ति और कीर्तियोंके लाभ होनेपर भी उनके त्यागके बिना सुख नहीं होता है इसलिये प्रत्याख्यानमय ज्ञान स्वभावी निज आत्मामें आत्मार्थ स्वयं सुखी होऊँ॥

(२४)

मुमुक्षुर्वा बुभुक्षुर्वा लम्बतां हि शिवाशिवम्।
इच्छाहीनः स्वविश्रान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

अन्वय-यः मुमुक्षुः च बुभुक्षुः स्यात् सः शिवाशिवं आलम्बताम् हि इच्छाहीनः स्वविश्रान्तः अस्मि अस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम्॥

अर्थ- जो मोक्षकी इच्छा करने वाला और भोगकी इच्छा करने वाला हो वह शुभ और अशुभका आलम्बन करे परन्तु सर्व इच्छाओंसे रहित पुरुष अपनेमें ही विश्राम पाया हुआ रहता है इसलिये मैं आत्मामें अपनेलिये अपने ही द्वारा सुखी होऊँ॥

(१७)

सुप्तमत्तदशालोके भ्रमो हि स्वच्युतौ दशाः ।
सर्वाभ्रमास्ततः स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-लोके सुप्त मत्त दशाः भ्रमाः कथ्यन्ते हि स्वच्युतौ सर्वाः दशाः भ्रमाः सन्ति ततः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-संसारमें सोये हुए व पागल हुएकी दशाएं भ्रम रूप कही जाती हैं परन्तु वास्तवमें निज आत्मासे च्युति होनेपर सब ही दशाएं (चाहे चतुराई पूर्ण हों) भ्रम रूप हैं इसलिये मैं तो स्वमें ही स्थित होता हुआ स्वमें स्व के अर्थ सुखी होऊं ॥

(१८)

यततामयतीपुंसे न तुष्येत् व्रती व्रते ।
ज्ञानस्थितिर्व्रतार्थोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अयती पुंसे यतताम् तु व्रती व्रते एव न तुष्येत् यतः व्रतार्थः ज्ञानस्थितिः अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ-अयती पुरुष व्रत रूप प्रवृत्तिमें प्रयत्न करे परन्तु व्रती व्रत में ही सन्तुष्ट न हो जावे क्योंकि व्रतका पालन न करनेका प्रयोजन ज्ञानमात्रमें स्थिर होना है इसलिये अपनेमें अपने अर्थ अपनेद्वारा स्वयं सुखी होऊं ॥

(२७)

वर्षाद्यं नूतनं लोके तत्त्वतस्तत्त्वबोधनम् ।
स्वदृप्तिर्यत्र तद्यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-लोके वर्षाद्यं दिनं नूतनं कथ्यते तत्त्वतः यदा तत्त्वबोधनं भवति तत् नूतनं दिनं समाप्ति तत् तत्त्वबोधनं तत्र भवति यत्र स्वदृप्तिः स्यात् तस्मात् स्वे स्वनूतनप्रकाशं प्राप्य स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-लोकमें वर्षादि आदि दिन नूतन कहा जाता है परन्तु वास्तवमें जिस दिन तत्त्वका बोध हो वही नूतन दिन है यह तत्त्वबोध उस स्थितमें है जिस स्थितिमें निज आत्माको तृप्ति हो इसलिये मैं निज आत्मामें निजका नूतन प्रकाश पाकर अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ।

(२८)

स्वयं यत्कुर्तमायाति तत्कर्तो न विपत्क्वचित् ।
अन्यथा क्लेशता तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यत् स्वयं कर्तुमायाति तत्कर्तो कश्चित् विपत् न अस्ति अन्यथा क्लेशता भवति तस्मात् कर्तृत्वविकल्पं परित्यज्य स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ।

अर्थ-जो स्वयं अर्थात् करनेकी भावना या वासना या बुद्धिके बिना करनेमें आता है उस कार्यमें कहीं विपत्ति नहीं है, अन्यथा अर्थात् करनेकी वासना व प्रयत्न बुद्धि करनेपर दुःख ही है इसलिये कर्तृत्वके विकल्पको त्यागकर स्वयं स्वयंके अर्थ स्वयंमें सुखी होऊँ ॥

(४३)

दुःखं द्वन्द्वश्च संतापो विपत्तृष्णान्ययोगतः ।
एकेऽनिष्टं न किञ्चिद्धि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-दुःखं द्वन्द्वः च संतापः विपत् तृष्णा अन्ययोगतः भवन्ति, हि एके किञ्चित् अनिष्टं न अस्ति अतः एके स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-दुःख, द्वन्द्व, और संताप, विपत्ति एवं तृष्णा ये सब अनर्थ अन्य पदार्थके संयोगसे होते हैं, निश्चयसे एक पदार्थमें कुछ भी अनिष्ट नहीं है इसलिये एक स्वरूप निज आत्मामें अपने लिये अपने आप स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४४)

कषायविषयत्यागे स्वास्थ्यमन्तर्बहिर्द्वयम् ।
तत्यागो ज्ञानमात्रं हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-कषायविषयत्यागे अन्तर्बहिर्द्वयम् स्वास्थ्यं अस्ति हि ज्ञानमात्रं तत्यागः अस्ति अतः ज्ञानमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-कषाय और विषयके त्यागमें अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकारका स्वास्थ्य है वास्तवमें ज्ञानमात्र स्थिति रहना ही कषायका त्याग है अतः मैं ज्ञानमात्र अपनेमें अपनेअर्थ स्वयं सुखी होऊँ ।

(४९)

पापोदये न हानिर्मे हानिः पापमये निजे ।
पापं परच्युतिस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-पापोदये मे हानिः न अस्ति निजे पापमये सति हानिः अस्ति पापं परे च्युतिः एव अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-पापके उदयमें मेरी हानि नहीं है परन्तु निज आत्माके पापमय होनेपर हानि है पाप पर पदार्थमें गिरना ही है इसलिये मैं तो अपनेमें ही अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(५०)

पुण्योदये न लाभो मे लाभः पुण्यमये निजे ।
पुण्यं स्वस्थितिता तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-पुण्योदये मे लाभः न किन्तु निजे पुण्यमये सति लाभः वर्तते पुण्यं स्वस्थितिता एव अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-पुण्यके उदयमें मेरा लाभ नहीं है किन्तु निज आत्माके पुण्यमय होनेपर लाभ है, पुण्य निज आत्मामें रहना ही तो है इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३)

ये दृश्यास्ते न जानन्ति जानन्तो निर्विकल्पकाः ।
कं ब्रुवाणि क्व तुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–ये दृश्याः सन्ति ते न जानन्ति; ये जानन्तः ते निर्विकल्प: सन्ति अतः अहं कं ब्रुवाणि क्व तुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सु स्याम् ।

अर्थ–जो दिखने योग्य हैं वे जानते नहीं हैं जो जानने वाले वे स्वभावसे विकल्पशून्य हैं इसलिये मैं किसको बो कहां सन्तोष करूं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊँ

(४)

स्तोतारः क्षणिकाः सर्वे स्तुत्यंमन्यः क्षयक्षयी ।
तुष्यः कस्तोषकः कश्च स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–एते सर्वे स्तोतारः क्षणिकाः सन्ति स्तुत्यंमन्य क्षयक्षयी अ पुनः कः तुष्यः च कः तोषकः अहं तु स्वे स्वयं स्वस्मै सु स्याम् ॥

अर्थ–ये सब स्तुति करने वाले लोग क्षणिक हैं मेरी स्तुति हैं ऐसा मानने वाला भी क्षणिक है फिर कौन तो सन्त करने योग्य है और कौन सन्तोष करने वाला है मैं अपने आप स्वके अर्थ सुखी होऊँ ॥

(५)

श्रुतं वृत्तं क्षणस्थायि क्षणिका वाङ्मयी स्तुतिः ।
मे वृत्तं न मे वाणी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वयः—वृत्तं क्षणस्थायि अस्ति वाङ्मयी स्तुतिः क्षणिका अस्ति पुनः मे वृत्तं न मे वाणी च अस्ति अहं तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—स्तुति जिस घटनाके आश्रयसे की जाती है वह घटना क्षणभङ्गुर है वचनमयी स्तुतिका शब्द क्षणभंगुर है फिर मेरी न घटना है और मेरी न वाणी है मैं तो अपनेमें अपने आप अपने लिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(६)

लोकोऽसंख्योऽमितः कालोऽनन्ताः जीवाः कदा कदा ।
कोऽप्यन्ते क्व क्व के केऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—कालः अमितः लोकः असंख्यः अस्ति जीवाः अनन्ताः सन्ति कदा कदा क्व क्व के के स्तोष्यन्ते अतः प्रशंसाविकल्पं विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—काल अपरिमित अर्थात् अनन्त है लोक असंख्यात प्रदेशी है जीव अनन्त हैं फिर कब कबतक कहां कहांपर कौन कौन प्राणी स्तुति करेंगे इसलिये प्रशंसाके विकल्पको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने द्वारा सुखी होऊँ ॥

(७)

स्वैकत्वेऽनुगताःस्वेभ्यः स्वस्यकुर्वन्ति ते क्रियाम् ।
भ्रान्त्या विमुह्य किं स्यानि स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-स्वैकत्वे अनुगता ते प्राणिन स्वेभ्यः स्वस्य क्रियांकुर्वन्ति-भ्रान्त्या विमुह्य स्वं किं स्यानि अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-अपने गुणोंमें परिणमन करते रहने वाले ये प्राणी अपने लिये अपनी क्रियाको करते हैं भ्रमसे विमोहित होकर अपने आपको क्यों घातूं ? मैं तो अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(८)

पुण्यं पापं सुखं दुःखं चेष्टा वाणी च कल्पना ।
विडम्बनाः परास्सन्ति स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-पुण्य पापं सुख दुःखं चेष्टा वाणी च कल्पनाः विडम्बना. सर्वा. विपदः परम् सन्ति अतः परदृष्टिं विहाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-पुण्य, पाप, सुख, दुःख, चेष्टा, वचन और कल्पना विडम्बनायें, सब विपत्तियां परनिमित्तसे (परनिमित्त बिना नहीं होती अतः) होती इसलिये परदृष्टिको छोड़कर अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(६)

सम्पद्वा विपदा भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे ।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-सम्पदा वा विपदा भूयात् अहं ज्ञानमात्रः अस्मि ते मे न स्तः पुनः कुतः तुष्याणि कुतः रुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-सम्पत्ति अथवा विपत्ति कुछ भी हो मैं तो ज्ञान मात्र हूँ सम्पत्ति और विपत्ति ये दोनों मेरी नहीं हैं फिर क्यों इस में तोष करूं व रोष करूं ? मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१०)

अयशो वा यशो भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे ।
कुतस्तुष्याणि रुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अयशः वा यशः भूयात् अहं ज्ञानमात्रः अस्मि ते मे न स्तः पुनः कुतः तुष्याणि कुतः रुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-अपकीर्ति अथवा कीर्ति कुछ भी हो मैं तो ज्ञान मात्र हूँ ये दोनों अर्थात् अपयश और यश मेरे नहीं हैं फिर यश में क्या तोष करूं अपयशमें क्या रोष करूं मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(६९)

अन्तर्बाह्यं जगत्सर्वं नश्वरं मम किं हितम् ।
कर्तव्यमितरद्व्यर्थं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–सर्वं अन्तर्बाह्यं जगत् नश्वरं ज्ञाने मम किं हितं अस्ति ज्ञाना
इतरत् कर्तव्यं व्यर्थं अस्ति अतः ज्ञानमये स्वे स्वस्मै स्व
सुखी स्याम ॥

अर्थ–यह सर्व अन्तरङ्ग और बाह्य जगत् विनाशीक है मे
क्या हित है जानने मात्रके सिवाय अन्य कर्तव्य व्य
है इसलिये ज्ञानस्वरूप निजमें निजके अर्थ स्वयं सु
होऊँ ॥

(७०)

स्वतंत्रोऽहं परास्तेषां तंत्रा योगवियोगयोः ।
कथं हृष्याणि खिद्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय–अहं स्वतन्त्रः अस्मि पराः तेषां तंत्राः सन्ति पुनः तेषां योग-
वियोगयोः कथं हृष्याणि ? कथं खिद्यानि ?··· स्वे स्वस्मै स्वयं
सुखी स्याम ॥

अर्थ–मैं अपने तन्त्र हूँ पर-पदार्थ उन उन ही पर-पदार्थोंके तन्त्र
हैं फिर उनके संयोग और वियोगमें क्यों हर्ष करूँ क्यों
खेद करूँ ? अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

	अध्याय	श्लो
स्वयंयत्कर्तुमायाति	५	
स्वरागवेदना विद्धः	१	
स्वलब्धता महद्दुर्गः	५	
स्वलब्धता सुधासिन्धु	५	
स्वबाह्ये न हितं किञ्चित्	७	
स्वस्थं स्वं पश्यतो मे न	५	
स्वस्थस्य सहजानन्दो	५	
स्वतः शत्रुः कुतो मित्रः	६	
स्वाख्यातीच्छाजनिर्दाहि	६	
स्वात्मचिन्तापि चिन्तैव	४	
स्वातन्त्र्यं वस्तुनो रूपं	१	
स्वालब्धयोऽन्योपकारी चेत	५	
स्वैकत्वं मंगलं लोके	१	
स्वैकत्वमौषधं सर्वं	१	
स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्मात्	१	
स्वैकत्वस्याप्युपायोमे	६	
स्वैकत्वेऽनुगता सर्वे	६	
स्वोपादानेन जायंते	७	
संकल्पेऽजनि संसारे		
सन्तृष्णस्य सदाकुल्य		

॥ ॐ नमस्तत्परमात्मने नमः ॥

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरवर्णिसहजानंदस्वामिविरचि

तत्त्वसूत्रम्

(अष्टाध्यायी)

प्रथमोऽध्यायः

ॐ। १। तत् ।२। सत् ।३। एकम् ।४। नित्यम् ।५। सप्रतिपक्ष
।६। अप्रतिपक्षम् ।७। अतत् ।८। असत् ।९। अनेकम् ।१०
क्षणिकम् ।११। अविभक्तम् ।१२। विभक्तम् ।१३। अखण्डम् ।१४
सांशम् ।१५। स्वपरिणतम् ।१६। अन्यापरिणतम् ।१७। स्वभावव
।१८। अन्याभाव्यम् ।१९। ज्ञानमात्रम् ।२०।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

तदहम् ।१। चित् ।२। ब्रह्म ।३। जीवः ।४। आत्मा ।५।
ज्ञाता ।६। द्रष्टा ।७। अमूर्तः ।८। कर्ता ।९। भोक्ता ।१०। अकर्ता
।११। अभोक्ता ।१२। विभुः ।१३। अशरीरी ।१४। स्रष्टा ।१५।
असृष्टा ।१६। शुद्धः ।१७। अशुद्धः ।१८। शक्तिमयम् ।१९।
ज्ञानमात्रम् ।२०।

हितार्थ गृहस्थों के कर्तव्य

१ ॐनमः सिद्धेभ्यः, शुद्धचिद्रूपोऽहं, ॐ आदि मन्त्रोंका प्रातः सायं जाप करें ।

२ प्रति दिन सबसे पहिले अनन्तज्ञानमय परमात्माकी भक्ति व पूजा करें ।

३ नियमित मननपूर्वक स्वाध्याय करें व समझने योग्य स्थल नोट करलें ।

४ दशलक्षण पर्व अष्टाह्निका प्रत्येक अष्टमी चतुर्दशीको पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करें ।

५ पर्वातिरिक्त दिनोंमें भी अधिकसे अधिक ब्रह्मचर्य पालन करें ।

६ स्त्रीके गर्भ रहनेके बाद दंपति १-२ वर्षका बच्चा होनेतक ब्रह्मचार्यसे रहें ।

७ सात व्यसनोंका पूर्ण रूपसे त्याग रखें ।

८ छने हुये जलसे बना हुआ शुद्ध भोजन करें ।

९ [illegible] ।कों तैय्यार किये हुए भोजनका त्याग करें

[illegible] भोजन आदि अपने संयमका लक्ष्य

होओ, सहजपरिणत होओ, जगत् धोखा है, सर्व भि
हैं, तू तो अकेला ही है।

\+ ॐ +

६१६. आत्माकी सहजपरिणति ही भगवती है जिसके प्रसा
में आत्माकी अनन्त विजय होती है । हे भगवति
प्रसन्न होओ– प्रकट होओ।

ॐ नमो भगवते सच्चिदानंदाय

—०:०—